सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 45, अंक : 2, मई - 2012

अमृत कण

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।।

तीनों लोकों के स्वामी, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक परमेश्वर को प्रणाम कर मैं अनेक शास्त्रों से उद्धृत करके 'राजनीति-समुच्चयः' नामक ग्रन्थ का लेखन-कार्य आरम्भ करता हूँ।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभम्।।

श्रेष्ठ मनुष्य इस शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके वेदादि शास्त्रों में उपदिष्ट कर्तव्य-अकर्तव्य, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म को ठीक-ठीक जान जाता है।

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते।।

मैं लोगों के मंगल की इच्छा से उस 'राजनीतिसमुच्चयः' का वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।।

मूर्खशिष्य को पढ़ाने से, दुष्टस्त्री का भरण-पोषण करने से और दुःखीजनों के साथ व्यवहार करने से बुद्धिमान् मनुष्य भी दुःख उठाता है।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।।

कटुभाषिणी और दुराचारिणी स्त्री, धूर्त स्वभाव वाला मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और सर्प वाले घर में रहना - ये सब बातें मृत्युस्वरूप ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्य:।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोग:।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तो की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 मई 2012 अंक : 2

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न
सहस्त्रमिषों हरिवो गूर्ततमा:।
सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजा:।।

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	तत्व ज्ञान क्या है? – डॉ. जे. पी. शर्मा	9
4.	गुरु जी मैं हार गया – जगदीश राए बंसल	15
5.	आओ उनका जन्म दिन मनायें – डॉ. नमिता सिसौदिया	16
6.	नर–जीवन सफल बनायें – श्रीमती शारदा सिसौदिया	17
7.	गीतामृत–पदावली	18
8.	योगआसन – हस्तपादांगुष्ठासन	21
9.	अद्भुत शक्तियों का केन्द्र मन – श्री ओमप्रकाश पालीवाल	23
10.	साधना करने का सर्वोत्तम समय–कलियुग – केशव देव उपाध्याय	26
11.	राजकुमार को प्राणदान – जगदीश राए बंसल	29
12.	भक्तियोग – प्रो. ऋषिराम शर्मा	33

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• हमारा विशेष लेख

कुण्डलिनी शक्ति

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमारे सभी योगाचार्यों ने अपने सभी ग्रन्थों के अन्दर कुण्डलिनी महाशक्ति का जिक्र किया है। यह नाड़ी कुण्डलिनी नाम से विख्यात है। वैसे ग्रन्थकारों ने अपने-अपने मत के अनुसार इसको कहीं कुण्डलिनी तथा कहीं पर सर्पिणी आदि-आदि नामों से लिखा है। कुण्डलिनी की स्थिति मूलाधार कमल में है। यह मूलाधार कमल मनुष्य के गुदा द्वार से चार अंगुल ऊपर है। इसी कमल से सुषुम्णा प्रवाहित होती है। सुषुम्णा के आधार में ही महाशक्ति कुण्डलिनी अवस्थित है। महर्षि श्री घेरण्डजी ने इसका वर्णन अपनी घेरण्ड संहिता में इस प्रकार किया है -

पश्चिमाभिमुखी योनि गुद मेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्द समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा।।
संवेठ्य सकला नाड़ी, सार्द्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णां विवरे स्थिता।।
सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अहिवत् सन्धि संस्थाना वाग्देवी बीज संज्ञिका।।

अर्थात् गुदा द्वार से जहाँ मेरु-दण्ड आरम्भ होता है। उसको देववाणी में मेढ्र कहा जाता है। उसी स्थान में पश्चिम की तरफ मुँह किये योनि-स्थान है और वहीं पर कुण्डलिनी की स्थिति है। यह कुण्डलिनी साढ़े तीन लपेटे लगाए हुए सर्पाकृति से स्थित है। यहीं से सब प्रकार की शक्तियों का स्फुरण होता है। कुण्डलिनी शक्ति सब शक्तियों की आधार है। जो लोग किसी भी प्रकार प्रयत्नशील होकर इसे जगा लेते हैं वे पुरुष सारी शक्तियों के मालिक बन जाते हैं। हठ योग प्रदीपिका में श्री योगिराज आत्मारामजी ने ऊँचे शब्दों में वर्णन किया है -

कुटिलांगी कुण्डलिनी भुजंगी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दा पर्याय वाचका:।।
उद्घाट्येत्कपाटं तु यथा कुंचिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।
येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।।

कंदोर्ध्व कुण्डलिनी शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बंधनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।।
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः।।
गंगा यमुनयोर्मध्ये बाल रंडा तपस्विनी।
बलात्कारेण गृह्णीयात्तद्विष्णोः परमं पदम्।।
इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इडा पिंगलयोर्मध्ये बालरंडा च कुण्डलिनी।।
पुच्छे प्रगृह्य भुजंगी सुप्तामुद्बोधयेच्चताम्।
निद्रां विहाय सा शक्ति रूर्ध्वमुपतिष्ठते हठात्।।
अवस्थिता चैव फणावती सा प्रातश्चसायं प्रहरार्धमात्रम्।
प्रपूर्यसूर्यात्परिधानयुक्त्या प्रगृह्य नित्यं परिचालनीया।।
उर्ध्वं वितस्तिमात्रं तु विस्तारं चतुरंगुलम्।
मृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्टितांवर लक्षणम्।।

अर्थात् कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्तिरीश्वरी कुण्डली अरुंधती यह कुण्डलिनी के पर्यायवाची हैं अर्थात् इन नामों में से कोई नाम भी कहीं आ जाय, तो समझ लेना चाहिए कि यह नाम कुण्डलिनी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। श्री स्वात्माराम योगी अपने मुखारविंद से कहते हैं कि जिस प्रकार ताली के द्वारा ताला खोल करके अपने द्वारों का उद्घाटन कर लेते हैं, इसी प्रकार कुण्डलिनी के द्वारा ही मोक्ष द्वार का भेदन किया जाता है। क्योंकि निरामय ब्रह्म स्थान को जिस रास्ते से जाया जाता है, उसी द्वार को अपने मुख से रोक करके यह महाशक्ति सोई हुई है। यह योगियों के मोक्ष के लिए है, ताकि योगी लोग इस शक्ति को जगाकर मुक्ति को प्राप्त कर लें। मूढ़ व मूर्खों के लिए यह महाशक्ति बन्धन का कारण है। जो इस सिद्धांत को जानता है वह वस्तुतः योग का वेत्ता बन जाता है।

कुटिलाकार यह शक्ति कुण्डलिनी सर्पाकृति से कही गई है। जो इस शक्ति को जगा लेता है वह निःसंदेह मुक्त हो जाता है। गंगा और यमुना के बीच बालरंडा नाम से यह तपस्विनी विराजमान है। इसको जागृत करके ही योगी भगवान विष्णु के परम पद को पा जाता है।

हमारे शास्त्रकारों ने इड़ा नाम से भगवती गंगा को कहा है और पिंगला नाम यमुना का है। इड़ा व पिंगला के मध्य बालरण्डा नाम से यह कुण्डलिनी स्थित है। इसकी पूँछ को ग्रहण करके सोई हुई महाशक्ति का जो उद्बोधन कर लेता है वह साधकों के लिए कल्याणक होता है। इस कुण्डलिनी महाशक्ति को जगाने के लिए कम से कम आधा पहर अवश्य अभ्यास करना चाहिए और ध्यानयुक्त होकर चालन करना चाहिए। जिसका ऊपर को फैलाव है, चतुरंगुल

विस्तार है, मृदुल धवल है, ऐसे इसके लक्षण कहे गये हैं।

संसार में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि *''मनुष्यो देवानां पशुः।''* अर्थात् मनुष्य देवताओं का पशु है। अर्थात् जिस प्रकार से गधे, घोड़े, भेड़, बकरी, भैंस इत्यादि पशुओं को मनुष्य ताड़ना दे करके अपनी आज्ञा में चलाया करते हैं और मनोऽभिलषित काम कराया करते हैं, इसके अतिरिक्त जहाँ–जहाँ मन करता है, वहाँ–वहाँ उनको बाँधते हैं, वहीं घास डालते हैं और खेत जोतना, भार ढोना आदि–आदि कार्य अपनी मन की इच्छानुसार पशुओं से कराया करते हैं, उसी प्रकार 'मनुष्यो देवानां' पशु की उक्ति के अनुसार मनुष्य देवताओं का पशु रहता है। देवता मनुष्य को जैसी–जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसे–वैसे ही सब काम मनुष्यों को करने पड़ते हैं। कारण केवल मात्र एक ही है कि देवताओं की कुण्डलिनी ही मति गति होती है और कुण्डली की गति के अनुसार ही ये शक्ति पा जाते हैं। देवताओं में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव का एवं महामाया भगवती दुर्गा का दर्जा सबसे उत्कृष्ट है, क्योंकि ये लोग महायोगी हैं और अनादिकालीन महासिद्ध हैं अर्थात् अनादिकालीन गति से स्वतः सिद्ध हैं। इन लोगों को किसी प्रकार की साधना नहीं करनी पड़ती। वे कुण्डली महाशक्ति के मालिक हैं, इसी कारण से सर्व शक्तिमान एवं परिपूर्ण हैं। एक साधारण हठयोग की साधना से परिपूर्णता को प्राप्त करने वाले योगी के लिए उपनिषदों में से प्रकार का लेख मिलता है –

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी, नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेत् च पुनस्तानि, स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरण माप्नोति, पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत्त एवासौ, मृतस्य मरणं कुतः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु, स्वेच्छया यत्रकुत्रचित्।।

अर्थात् योगी की शक्ति अचिन्त्य हो जाती है, वह जैसा चाहे वैसे ही नाना प्रकार के अपने रूप धारण कर लेता है और योगशक्ति से प्रकट किये हुए अपने सभी रूपों को अपने अन्दर ही लीन कर लेता है। योगी के अन्दर यह सामर्थ्य होती है कि वह तीनों लोकों में जहाँ चाहे विचरण कर सकता है। यह सभी प्रकार की शक्तियाँ योगी के अन्दर कुण्डलिनी महाशक्ति को जागृत करने पर आती है। पुराणों में इस प्रकार के अनेकों उपाख्यान मिलते हैं। इनमें योगियो की अद्भुत शक्ति का पूरा–पूरा परिचय मिलता है। जैसे रामायण में भारद्वाज मुनि का उपाख्यान मिलता है कि भरतजी के आगमन पर भारद्वाज मुनि ने अपनी योग–शक्ति से ही भरतजी के ठहरने के लिए बड़े–बड़े रंग–महल एवं दास–दासियों को प्रकट कर दिया। यह भरद्वाजजी की योग–शक्ति का ही परिचय था। अब भी हिमालय में निवास करने वाले बड़े–बड़े सिद्ध योगिराजों के कथानक मिलते हैं। ये सारी शक्तियाँ कुण्डलिनी महाशक्ति के आधार ही मनुष्य में प्रकट होती है। कुण्डलिनी महाशक्ति त्रिगुणात्मिका है। जिस समय साधना करने वाले साधक कुण्डलिनी का स्फुरण पा लेते हैं। उस समय वह अपनी प्रगति के अनुसार सिद्धियों को

पा जाते हैं। सिद्धियाँ रजोगुण प्रधान, सतोगुण प्रधान तथा तमोगुण प्रधान होती है। ये सभी सिद्धियाँ कुण्डलिनी के स्फुरण के आधार पर ही मनुष्य में जागृत होती हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्णा के आधार पर जब कुण्डलिनी की गति होती है उस समय प्रसुप्त कुण्डलिनी जग जाती है तो यह सुषुम्णा द्वार को छोड़ देती है। उस समय कुण्डलिनी शक्ति रूप से यदि सुषुम्णा के अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ी का स्पर्श करती है तो साधक सभी प्रकार के योगेश्वर्यों को पा जाता है और योगी के प्राण सहस्त्र कमल में पहुंचकर विलीन हो जाते हैं और आत्मा अपनी सहज स्वरूप स्थिति को पा जाता है। कदाचित् कुण्डलिनी चित्रिणी नाड़ी का स्पर्श करती है तो योगी नाना प्रकार के दिव्य देव रूपों को देखता है और उसी प्रकार की उसकी प्रगति होती है। इसी प्रकार से वज्रा नाड़ी के स्पर्श से तमाम ताकतों को पा जाता है। इस विषय में लेखनीय प्रकरण तो बहुत है किन्तु इस छोटे से लेख में हमने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि कुण्डलिनी शक्ति ही सब शक्तियों की जननी है। इसके जाग जाने पर ही सभी चक्रों का भेदन हो पाता है। महर्षि घेरण्ड ने एक ही श्लोक में वर्णन कर दिया है –

सुप्ता गुरु प्रसादेन यदा, जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि, भिद्यन्ते नात्र संशयः।।

अर्थात् गुरुदेवजी की कृपा से कुण्डलिनी जागृत हो जाती है तब सब चक्रों का भेदन हो जाता है। इन चक्रों का भेदन होने से साधक सारी शक्तियों व सिद्धियों का मालिक बन जाता है।

● ● ●

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

अर्थात् पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

मन की एकाग्रता एवं योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

मनस्तत्व पर सभी दर्शनकारों ने विचार किया है। सभी ने मन के स्वरूप एवं स्वभाव पर प्रकाश डाला है। सभी ने मन को चंचल माना है। न्याय दर्शन मानता है कि मन एक समय में एक ही प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। एक साथ अनेक विषयों का ज्ञान संभव नहीं है। जैसे–जैसे विषय मन के सामने आते हैं ज्ञान होता रहता है कई विषय सामने आ जायें तो युगपद् सभी का ज्ञान नहीं हो सकता। गीता में अर्जुन ने मन को अत्यन्त प्रमथनशील कहा है। अतः इसे वश में करना दुस्तर है। भगवान ने उत्तर में कहा – अर्जुन! अवश्य ही मन प्रमथनशील है किंतु अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। अभ्यास के अन्तर्गत जाप एवं प्राणायाम हैं जिनसे मन को एकाग्र कर सकते हैं। योग दर्शन में भी भगवान पतंजलि ने चंचल मन को एकाग्र करने के लिए अभ्यास और वैराग्य रूप दो उपाय बतलाये हैं। योग साधना में प्राणायाम सटीक उपाय है मन को एकाग्र करने का। पतंजलि देव के मतानुसार मन का दो प्रकार का स्वभाव है। चंचलता भी इसका एक स्वभाव है तथा एकाग्रता भी इसका स्वभाव है। यदि अभ्यास और वैराग्य पूर्वक इसे एकाग्र करने का प्रयत्न किया जाये तो एकाग्र हो जाता है अन्यथा चंचल ही रहता है।

मन की एकाग्रता योग की प्रथम सीढ़ी है। मन की एकाग्रता से योग प्रारम्भ होता है। मन को एकाग्र करने के लिए योग में 'धारणा' का अवलम्ब लिया जाता है। मन को एक ही विषय पर बार–बार केन्द्रित करने से मन एकाग्र होने लगता है। एकाग्र मन में ज्ञान का समस्त भंडार खुल जाता है। धारणा की अतुलित शक्ति है।

योगी धारणा के अभ्यास से अपने श्वास रूपी पुष्प को इष्टदेव के चरणों में अर्पित करता है। इस प्रकार से हजारों श्वास रूपी पुष्प को समर्पित करता है। वस्तुतः यही पूजा यथार्थ पूजा है। अजपा विधि भी इसी प्रकार की है जो गुरु गम्य है। इस विधि से साधक अहर्निश आत्मभाव में रह सकता है। इसी से योगी का आत्मोत्थान व विकास होता रहता है। ज्यों–ज्यों साधक के रजोगुण तमोगुण क्षीण होते हैं साधक अखण्ड सुख की अनुभूति करता है। इस स्थिति के लिए भगवान कृष्णचन्द्र कहते हैं – सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियं। योगी को जो आत्म सुख मिलता है वह अतीन्द्रिय सुख है जो केवल बुद्धि से ही ग्रहण किया जा सकता है। यही इन्द्रियातीत सुख कहलाता है जो योग से ही मिल सकता है अन्य उपायों से नहीं। शास्त्रों में योग के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का मार्ग बताया गया है। किन्तु ये तीनों परस्पर अभिन्न हैं जैसा कि कहा भी है –

वस्तुतस्तु त्रयो योगा अभिन्नास्ते परस्परम्।
साधकानां रुचिर्भेदात् त्रिविधा योग संज्ञिता:।।

साधकों की रुचि एवं सामर्थ्य से योग के भेद दिखाई देते हैं वस्तुत: वे परस्पर अभिन्न व एक दूसरे के पूरक हैं। इन तीनों मार्गों में से एक मार्ग को चुनकर साधक यदि दृढ़ता से आरूढ़ हो जाता है तो क्रमश: आगे बढ़ जाता है और लक्ष्य तक पहुँच जाता है। योग की साधना मानव जीवन में ही की जा सकती है। गुरुदेव भगवान प्राय: अपने प्रवचनों में ''दुर्लभो मानुषो जन्म'' कहकर मानव जन्म की दुर्लभता का संकेत करते रहते थे। योग ही मानव जीवन के समस्त दु:खों का नाश करने में समर्थ है। मनुष्य की वृत्ति ही स्वभाव है। मनुष्य योनि स्वभाव को शुद्ध व उज्जवल बनाने के लिए है। स्वभाव के बदलने व बनाने में मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है। आज तमोगुण के प्रभाव से चारों ओर पाप, झूठ, अनाचार का साम्राज्य हो गया है। अधर्म उन्नति पर है दुष्ट फलते – फूलते हैं, सज्जन कष्ट पाते हैं। शास्त्र का लेख है –

''साधु सीदति दुर्जनो प्रसीदति प्राप्ते दुर्युगे कलौ''

अर्थात् कलिकाल में सज्जन कष्ट पाता है और दुर्जन फलता–फूलता है। किन्तु यह शाश्वत सत्य नहीं है। सत्य सदा ही विजयी रहता है।

अत: मनुष्य को अपनी स्वभाव व वृत्ति का परिशोधन करना चाहिए। इसी से योग मार्ग में उत्कृष्टता मिलेगी। ध्यान–योग–परायण रहने का सदा स्वभाव बनाना चाहिए। तभी परम कल्याण के मार्ग में सफलता मिलेगी।

● ● ●

सर्वशक्तिमान् ईश्वर सभी शक्तियों तथा प्रज्ञा का एवं पवित्रता, प्रेम, शान्ति, आनन्द और ज्ञानशक्ति का भण्डार है। उससे कुछ भी माँगने की आवश्यकता नहीं है, केवल स्वयं उसके समीप बैठने की, अपने आपको उसके समीप, उसके अन्दर अथवा उसको अपने अंदर अनुभव करने की आवश्यकता है, अपना हृदय प्रेम, शान्ति एवं आनन्द से भरपूर हो जायेगा। ये सभी आपको स्वत: प्राप्त होंगे।

तत्व ज्ञान क्या है?

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, हिमाचल प्रदेश

योग साधकों के लिए परमावश्यक है कि उन्हें अपने ईश्वर प्रदत्त शरीर के बारे में वास्तविक ज्ञान हो। ज्ञान के बिना योग पथ पर चलना दुष्प्राय है। किसी भी कार्य की पूर्णता तभी हो सकती है जब उसके बारे में मनुष्य को पूरा–पूरा ज्ञान हो। अतः वास्तविक ज्ञान के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।

भगवान शिव योगशास्त्र के अनादि ज्ञाता है और ब्रह्माण्ड के सर्वप्रथम अनादि योगी हैं। तत्व ज्ञान के विषय में बतलाते हैं –

देहेऽस्मिन वर्तते मेरूः सप्तदीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः।।
ऋषियों मनुष्यः सर्वे नक्षाणि ग्रहस्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः।।

(शिव संहिता)

अर्थात् मानव शरीर में सात द्वीप तथा सुमेरू पर्वत विद्यमान हैं। नदियाँ, सागर पर्वत क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि मुनि, सभी नक्षत्र, ग्रह, पुण्य तीर्थ एवं पीठ तथा पीठ देवता सभी इस मानव देह में विराजमान है। अतः हमारे शरीरों में सभी तीर्थ स्थान, तपोवन, देवालय मौजूद हैं। हमें येन केन प्रकारेण उन शरीर स्थित तीर्थो, देवालयों की श्रद्धा भक्ति के साथ सेवा करके अपने पुण्यकर्मो को संचित करना चाहिए। इधर, उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। यह ठीक उसी तरह की बात हुई जैसे:– 'बगल में छोरा नगर में ढिंढोरा।' इससे मानव का भटकाव सिद्ध होता है। वास्तविकता का ज्ञान न होना ही मुख्य समस्या है। जैसे कस्तुरी वाला हिरण कस्तूरी की सुगन्ध के लिए दर–दर भटकता रहता है जबकि कस्तूरी उसके अन्दर ही होती है। यही वास्तविकता उसे ज्ञात नहीं होती। इस कारण इधर–उधर दौड़ता रहता है तथा एक दिन बहम का शिकार बन जाता है।

सृष्टि तथा संहार करने वाले चन्द्रमा तथा सूर्य भी हमारे शरीर में भ्रमण करते रहते हैं। मानव शरीर पाँच तत्वों – पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु से मिलकर बना है। ठीक ब्रह्माण्ड भी इन्हीं तत्वों से बना है। तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं वे सभी शरीरस्थ सुमेरु के आधीन रहते हुए अपने–अपने कार्यों में संलग्न रहते हैं। इन सब को भली प्रकार जानने वाला निःसंदेह योगी होता है।

ब्रह्माण्ड संज्ञक देहे यथा देशं व्यवस्थित:।
मेरु श्रृङ्गे सुधारश्मिर्दहिरष्टकलायुत:।।

(शिव संहिता, 5/30)

देवाधि देव महादेव जी कहते हैं कि मानव पिंड ब्रह्माण्ड की तरह है। ब्रह्माण्ड तथा शरीर में कोई अन्तर नहीं है जो भी शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। ब्रह्माण्ड में सभी देश तथा सुमेरु आदि पर्वत स्थित हैं वैसे ही मानव शरीर में सभी देश, सुमेरु आदि पर्वत विराजते हैं। उसके श्रृग के ऊपर अपनी आठ कलाओं के साथ चन्द्रमा अवस्थित है।

चन्द्रमा अधोमुख रहकर चौबीसों घण्टे अमृत की वर्षा करता रहता है। अमृत दो प्रकार का होता है। सूक्ष्म तथा स्थूल। शरीर की तुष्टि के लिए ईड़ा नाड़ी जो वाम मार्ग से पवित्र जल रूपी गंगा बहती है वह अवश्य ही शरीर की रक्षा और पोषण करती है। वह अमृत रश्मियों से युक्त ईड़ा नाड़ी नासिका के वाम भाग में स्थित रहती है।

शुद्ध दूध के समान आभा वाला चन्द्रमा हर्ष पूर्वक अपने मण्डल से मेरू पर आकर इड़ा के रन्ध्र मार्ग के द्वारा शरीर को पुष्ट करता है। मेरुदण्ड के मूल में अर्थात् नीचे की तरफ बारह कलाओं सहित सूर्य स्थित रहता है। दक्षिण मार्ग अर्थात् पिंगला नाड़ी के मार्ग से प्रजापति उर्ध्वगति होता है।

चन्द्रमा से स्रवित हुए उस अमृत रस को सूर्य अपनी रश्मियों के द्वारा ग्रहण कर लेता है तथा वायुमण्डल से मिलकर सारे शरीर में भ्रमण करता है। वह सूर्य परम निर्माण मूर्ति दक्षिण की तरफ होता है। अत: पिंगला नाड़ी दायी तरफ स्थित है। वृष्टि संहारक सूर्य लग्न योग से नाड़ी के द्वारा प्रवाहित रहता है।

सार्धलक्षत्रिय नाड्य सन्ति देहान्तेर नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश।।

(शिवसंहिता, 13वाँ श्लोक)

सुषुम्नेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिहवका।
कुहू सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी।।

(शिवसंहिता, 14वाँ श्लोक)

करूणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी।
एतासुतिस्त्रो मुख्या: स्यु: पिंगले डा. सुषुम्णिका।

(शिव संहिता, 15 वाँ श्लोक)

मनुष्य शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ प्रधानता से पाई जाती हैं। उनमें से चौदह

नाड़ियां प्रमुख हैं। ये इस प्रकार है – सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिव्हका, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्वनी, वारुणा, अलम्बुषा, विश्वोदरी तथा यशस्विनी। इन चौदह में से इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियाँ मुख्य हैं।

उपर्युक्त तीन नाड़ियों में भी सुषुम्ना नाड़ी सबसे प्रमुख होती है। योग से सम्बन्धित कार्य सुषुम्ना के द्वारा ही होते हैं। मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना का स्थान है। इड़ा नाड़ी वाम नासाद्वार में तथा पिंगला नाड़ी दांये नासाद्वार में पायी जाती है। आध्यात्मिक रूप से इड़ा नाड़ी को यमुना, पिंगला को गंगा तथा सुषुम्ना नाड़ी को सरस्वती कहा गया है। बांये नासाद्वार को चन्द्रमा, दांये नासाद्वार को सूर्य का स्थान माना गया है। ये तीनों नाड़ियां मुख्य तन्तु के समान अधोमुख रूप से स्थित रहती हैं। सरस्वती नाड़ी को अग्निस्वरूप कहा गया है।

चित्रा नाड़ी पंचवर्णा है। उज्जवल तथा शुद्ध होती है। सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में स्थित है। यह नाड़ी शरीर की उपाधि की कारण भूता है। यही वह दिव्य मार्ग है जो अमृतरस तथा आनन्द उत्पन्न करता रहता है जिसके ध्यान करने मात्र से योग साधको के जन्मजन्मान्तरों के पाप समूल नष्ट हो जाते हैं।

गुदास्थान से दो अंगुल ऊपर तथा मेढ़ से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल विस्तार वाला एक आधार कमल समरूप से विद्यमान है। इसे मूलाधार चक्र कहा जाता है। आधार कमल की कर्णिका में त्रिकोणाकार योनि सुशोभित है।

तत्रविद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता।
सार्द्धत्रिकारकुटिला सुषुम्णामार्गसंस्थिता।
जगत्संसृष्टिरूपा सा निर्माणे सततोद्यता।
वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैनमस्कृता।।

(शिवसंहित, 24 श्लोक)

वही परम देवता स्वरूप कुण्डलिनी साढ़े तीन लपेटे लगाये हुए सुषुम्ना मार्ग में विद्यमान रहती है। वह कुटिला सर्पाकार टेढ़ी विद्युत रेखा के आकार की होती है। यह कुण्डलिनी जगत की संसृष्टि स्वरूपा सदैव निर्माण कार्य में तैयार रहती है। वही वाग्देवी वाच्य–अवाच्य रूप में तथा देवों द्वारा भी नमस्कार की हुई है।

नासिका के वाम भाग में इड़ा नाम की जो नाड़ी स्थित है, वह सुषुम्ना के साथ मिलकर दांये नासाद्वार में गई है। इसी प्रकार पिंगला नाड़ी जो दांये नासाद्वार में रहती है, वह सुषुम्ना के साथ बांये नासाद्वार को गई है।

इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। सुषुम्ना के छः स्थानों में छः शक्तियाँ रहती हैं और छः कमल चक्र रहते हैं जिन्हें मूलधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र के नामों से जाना जाता है। योग साधक अपने योगरथ पर सवार होकर

एक–एक चक्र का भेदन करता हुआ आगे बढ़ता है। जैसे रेलगाड़ी स्टेशन से छूटकर छोटे–बड़े सभी स्टेशनों से गुजरती है तभी अपने गन्तव्य तक पहुँच पाती है। उसी प्रकार कुण्डलिनी महादेवी जाग्रत हो जाने पर एक–एक कमल चक्र का भेदन करके सहसार चक्र तक पहुँचती है। जैसे नदिया समुद्र में मिलकर शान्त होकर एकाकार हो जाती है। वैसे ही कुण्डलिनी सहसार चक्र में जाकर शान्त हो जाती है। साधक को अपरमित ज्ञानों का भंडार मिल जाता है।

अनेकों नाड़ियाँ मूलाधार से निकलकर जीभ, मेढ़, नेत्र, पैर के अँगूठे, कान कुक्षि, हाथों के अँगूठा, गुदा, उपस्थ आदि अंगों में जाकर पूर्णता प्राप्त करती हैं।

इन्हीं नाड़ियों की शाखा–उपशाखायें निकल कर क्रमशः साढ़े तीन लाख नाड़िया अपने अपने स्थानों में जाकर स्थित हो जाती है। यह सभी नाड़िया भोगवहा अर्थात् भुक्त पदार्थों को इस रूप में प्रवाहित करती हैं। यह वायु के संचार में अत्यन्त दक्ष एवं संयोग–वियोग से ओत–प्रोत होती हुई मानव शरीर में विद्यमान हैं।

बारह कलाओं से युक्त सूर्य मण्डल के मध्य में जो अग्नि प्रज्वलित रहती है उससे अन्न का पाचन होता है। वह वैश्वानर अग्नि मेरे तेज से प्रकट हुई है। यह प्राणियों के शरीरों में विद्यमान रहकर विविध प्रकार परिपाक में तत्पर रहती है।

वैश्वानर अग्नि वायु, बल और पुष्टि देती है। शरीर उससे कान्तिशाली बनता है। इससे शारीरिक रोगों का नाश हो जाता है। वैश्वानर अग्नि को विधिवत प्रज्वलित करके विधिवत अन्न की आहुति देनी चाहिए। सद्‌गुरु ही इस वैश्वानर अग्नि को प्रज्वलित करने में समर्थ होते हैं, अतः उनसे विधिवत दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

मानव शरीर ब्रह्माण्ड की तरह है। शरीर में अनगिनत स्थान है। उन स्थानों के पृथक–पृथक नाम हैं। सभी स्थानों को जान पाना नितान्त कठिन है।

शरीर में बसी आत्मा अनादि काल से चली आ रही वासना रूपी माला में घूमती हुई कर्मबन्धनों से बँधी रहती है। शरीर के अनेकों गुणों को ग्रहण करता हुआ जीव शरीर के सारे व्यापारों को करता रहता है। पूर्व जन्मों के संचित शुभाशुभ कर्म संस्कारों को भोगता है।

संसार में जितने भी पाप–पुण्य कर्म हैं, उन सब का मूल कारण केवल हमारे कर्म ही हैं। सभी प्राणी कर्मों के फलों को जिन्हें संस्कार कहा जाता है, भोगते हैं। पुण्य कर्मों से सुख तथा पाप कर्मों से दुःख भोगते हैं।

प्राणी अपने कर्मों के फल को ही भोगा करता है। कर्मों का फल सुख और दुःख ही होते हैं। जो कर्म करता है कर्मफल भी उसे ही भोगना पड़ता है। कर्त्ता से भोक्ता अलग नहीं होता सकता, अतः जिस प्राणी के भोग के लिए जो समय निश्चित है, उसे उसी समय में अपने कर्मों का फल भोगने के लिए जन्म लेना पड़ता है।

प्राणी अपनी वासनाओं के कारण भ्रमित रहा करता है। जब तक वासना दूर नहीं होती तब तक भ्रम भी उससे दूर नहीं हटता है। ज्ञान उत्पन्न होने से भ्रम का समूल विनाश हो जाता है।

विनाश हो जाने पर कुछ भी शेष नहीं रहता। ऐसे ज्ञान को मोक्ष का ही साधन जाना जाता है। माया रूपी परदा उठने से प्राणी की बुद्धि सभी भ्रमों के मायाजाल को हटा देती है।

यर्वा कर्मजित देहं निर्वाण साधन भवेत।

तदा शरीर वहनं सफमं भ्यात वान्यथा।

(शिव संहिता, 52 श्लोक)

अर्थात् जब तक कर्म अर्जित यह शरीर है तब तक मोक्ष प्राप्ति का साधन कर ही लेना श्रेयस्कर है। क्योंकि शरीर छूटने के बाद कोई प्रयत्न करना अपने वश में नहीं रहेगा। न मालूम मृत्यु के बाद किस योनि में जन्म लेना पड़े। अधम योनियों में प्राणी अपने उद्धार के लिए कुछ भी तो नहीं कर सकता। मानव योनि ही कर्म योनि कही गयी है। इसलिए मानव रहते हुए इसी जन्म में आत्मज्ञान प्राप्ति के साधन कर लेना चाहिए। तभी हमारा कल्याण होगा।

यादृशो वासना मूला वर्तते जीवसंगिनी।

तादृशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविधौ भ्रमम्।।

संसार सागरं तर्तु यदीच्छेद्योगसाधनः।

कृत्वा वर्णाश्रियं कर्म फलवर्त्त तदाचरेत।।

(शिव संहिता, 54 श्लोक)

जीव के साथ जैसी भावना रहती है वैसे ही शुभाशुभ कर्मों को जीव भ्रम के वशीभूत होकर करता है। क्योंकि उसके पैदा होने या मरने में वही वासना कारण होती है। इसीलिए मानव को अपने वर्णाश्रम में रहते हुए निष्कामकर्मों को करना चाहिए तभी वह आत्म साक्षात्कार को प्राप्त हो सकेगा।

विषयासक्तपुरुषा विषयेषु सुखेप्सवः।

वाचाभिरुद्धनिर्वाणा वर्तन्ते पाप कर्मणि।।

(शिवसंहिता, 55 श्लोक)

विषयों में आसक्त रहने वाले लोग प्रायः विषयभोगों में ही लगे रहते हैं तथा विषयों के सुखों में डूबे रहते हैं। उनकी वाणी सर्वेत्र विषयी तथा पाप कर्मों वाली ही बनी रहती है। अतः जीव को विषय वासनाओं से दूरी बनाये रखनी चाहिए।

आत्मा तमात्मना प्रश्यन्न किंचिदिह पश्यीत।

तदा कर्मपरित्यागे न दोषोऽस्ति मतं मम्।।

कामदयो विलीयन्ते ज्ञानादेव न चान्यथा।

अभावे सर्वतत्वानां स्वयं तत्वं प्रकाशते।।

(शिव संहिता, 57 श्लोक)

ज्ञानी पुरुष जब आत्मा के द्वारा आत्मा को देखता हुआ अन्य किसी वस्तु को न देखे

अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त उसे अन्य कुछ भी न दिखाई दे, तब उसे कर्मो का परित्याग करने से कोई दोष नहीं होगा। सभी पदार्थ ज्ञान में लीन हो जाते हैं। सभी तत्वों का अभाव हो जाता है। तब केवल आत्मज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान रह जाता है। उसके काम, क्रोध, मद, लोभ तथा मोह सब विकार नष्ट हो जाते हैं प्राणी की इसी अवस्था का नाम तत्व ज्ञान है।

मेरे परम आराध्य योग योगेश्वर अनन्त श्री श्री 1008 सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरण कमलों में मेरा कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम। सभी गुरुभाइयों को जय गुरुदेव !

● ● ●

विश्वेश्वरायनमः श्रीरामलालप्रभवेनमः सद्गुरुपरब्रह्मणेनमः

श्री योग साधन आश्रम (ट्रस्ट) ऋषिकेश वार्षिक महोत्सव

आदरणीय गुरुभाई बहिनो,

अपने योग साधन आश्रम के रोड ऋषिकेश (ट्रस्ट) का वार्षिक महोत्सव 28, 29 व 30 मई 2012 तदनुसार सोमवार, मंगलवार व बुधवार को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। उत्सव में अनेक विद्वानों द्वारा योग सिद्धान्तों पर प्रवचन तथा योग क्रियाओं का प्रदर्शन तथा हरिनाम संकीर्तन आदि बहुत ही रोचक कार्यक्रम होंगे।

अतः अपने इष्ट मित्रों के साथ अवश्य उत्सव में आकर पुण्य बढ़ावें। जय गुरुदेव!

अध्यक्ष	महामन्त्री	शुभेच्छु
ओम प्रकाश शर्मा	**बिशन चन्द गर्ग**	**आचार्य पूर्णचन्द्र शर्मा**

गुरु जी मैं हार गया

– जगदीश राए बंसल, 'अधम'

तर्ज – गाड़ी आले मनैं बिठाले.....

गुरुदेव हमारे, बड़े निराले, कर दो बेड़ा पार
गुरु जी मैं हार गया। टेक....

शरणा तेरा पा करके- जिवन मेरा धन्य हुआ।
ध्यान-धारणा बनती नहीं – मनवा बेचैन हुआ।।
इस मनवा को डोगे मारो – कर दो शक्ति संचार।
गुरु जी मैं .... (1)

सिन्धू तट पर मैं बैठा - लहरों में ही खोया रहा।
प्रारब्ध मेरा यों मचला - ज्यों मछली मचल रहा।
योग पाश में बान्ध लो दाता – सुन लो दीन पुकार
गुरु जी मैं ...... (2)

लल्ला कह के बुलाते थे – अपने सीने से लगाते थे
दुखियों के कष्ट मिटाते थे – झोली सब की भरते थे।
निज आंचल में आंसु भरते – कोटि कोटि प्रणाम
गुरु जी मैं ..... (3)

पल-पल मेरी उमरिया बीते- काल का झौंका आएगा
लम्बे सफर का टिकट कटा –कौन स्टेशन पाएगा
सत्संग में जो वचन दिया था – है अधम को याद
गुरु जी मैं ...... (4)

● ● ●

आओ उनका जन्म दिन मनायें

– डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

मेरे भोले योगीराज, देंगे दर्शन वो आज,
करो उनकी जय जय कार, आओ उनका जनम दिन मनायें।

वो तो कैलाशवन में है बैठे, जहाँ गंगा की धारा है बहती।
चंदन की खुशबू चारों ओर, महकें जन–जन के प्राण।
आओ उनको ही हम सब ध्यायें।

ऊँचा आकाश उनका मन है, चंदा सूरज उनके नयन है।
तारे भक्तों की ही टेर, वो तो सकल ब्रह्माण्ड समाये
आओ उनका जनम दिन मनायें।

सदगुणों के रंग सजाना और गीत भक्ति के गाना।
छोड़ो राग और द्वेष, करो उनसे ही नेह
आओ उनको ही हम अपनायें।

उनसे ही आस लगाना, और कहीं ना झोली फैलाना
उनका वृहद वरद हस्त, रहे हम पर सदा
उनके ही गुण गाना, आओ योग की धारा में बह जायें
उनका जनम दिन मनायें।

उनकी मोहक मुस्कान, करे जन जन का कल्याण
वो तो सबसे महान, आओ उनका जनम दिन
झूम झूम मनायें।

● ● ●

नर-जीवन सफल बनायें

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

गुरु चरण–शरण जब हम आये, जीवन की अनुपम बगिया में,
हमने सकल मनोरथ पाये, आओ हिल मिल नर जीवन सफल बनायें।।

बाजे ढोल मजीरा बाजे रे गुरुवर के दरबार, हमरे गुरुवर की मुरतिया है पार ब्रह्म साकार
चहुँ ओर भटक–भटक थके, तुम्ही इक आधार, हमरी डगमग करती नैया के, तुम्ही हो खेवनहार
बाजे ढोल मजीरा बाजे झूमे सकल दरबार।।

मन–मयूर–मत वाला हो नाचे, प्रबल प्रेम हर्षाय, श्रद्धा के नुपुर बाजे करें, मधुर झंकार
सत्संग की सुरसरि मे डूबो, खोज रहे मुक्ति द्वार, भक्ति की माला पहनावें,
करें प्रभुजी की जय जयकार
बाजे ढोल मजीरा बाजे रे गुरुवर के दरबार।।

ध्यान, धारणा समाधि द्वारा प्रभु जी से हो साक्षात्कार, मंत्र–जाप की डोर पकड़,
कर लो भव–सागर पार
योग की दुंदुभि–मंत्र जाप का नगाड़ा बाजे, रज–तम भागे और भागे सभी विकार
श्वास–प्रश्वास की अविरल धौंकनी से, भस्मी–भूत होवे मन के कलुषित विचार
वाद्यों की स्वर लहरी बह रही गुरुवर के दरबार।।

मन मंदिर के कपाट खोलो, ध्यान की रोली सजाओ
उसमें बैठे अपने गुरु करतार, प्रभुजी की सब मिल करो जय–जयकार
गुरु नाम के पावन घोष से भूलो सकल संसार, देखो हमारा महातीर्थ सिद्ध गुफा सवांई धाम
यहाँ आनंद अमृत बरस रहा, घुमड़–घुमड़ तान छेड़ रहे
विचारों के परिंदे मचल–मचल दूर बहुत दूर – अविरल गति से दौड़ रहे, काबू में नहीं मन
बोलो प्रभु जी की जय, प्रभुजी की जय।

● ● ●

गीतामृत पदावली

(गतांक से आगे)

एकसाथ ही सूर्य सहस्त्रों भासित कर दें यदि आकाश।
तभी कदाचित् हो सकता है, जैसा था वह दिव्य प्रकाश।। 12।।

वासुदेव के उस शरीर में अर्जुन ने देखा उस काल।
नानाभांति पृथक होकर भी एकत्रित वह जगत विशाल।। 13।।

हुआ बहुत विस्मित तब, अर्जुन! रोमांचित हो खड़ा रहा।
शीश झुकाकर, नमस्कार कर, हाथ जोड़ यों वचन कहा।। 14।।

अर्जुन उवाच :
देख रहा हूँ जीव–मात्र को, देवों को, सर्पों को भी।
ब्रह्मदेव को कमलासन पर, ऋषियों को भी यहाँ सभी।। 15।।

बहु कर, उदर, नेत्र, मुखवाला देख रहा तव रूप अनन्त।
विश्वरूप! दिखते न तुम्हारे मुझको आदि, मध्य औ' अंत।। 16।।

गदा–चक्र–युत, मुकुट सुशोभित, दीप्तिमान तव रूप महा।
सूर्य ज्योति की प्रखर किरण सी प्रभो तुम्हें मैं देख रहा।। 17।।

अन्तहीन परब्रह्म तुम्हीं हो, तुम्हीं विश्व के परम निधान।
अमर, अनन्त धर्म के रक्षक, पुरुष पुरातन तुम भगवान्।। 18।।

आदि, मध्य औ' अन्त–रहित तुम, कर अनन्त हैं, शक्ति अपार।
सूर्य–चन्द्र हैं नेत्र, अनलमुख, तपता तुमसे सब संसार।। 19।।

गगन–धरा के बीच दिशाएँ तुमसे हैं परिपूर्ण सभी।
देख तुम्हारा रूप भयंकर, व्याकुल तीनों लोक अभी।। 20।।

कुछ भय से करबद्ध खड़े हैं करते तुममें देव प्रवेश।
सिद्ध–महर्षि स्वस्ति हैं कहते, स्तुति तव करते देवेश।। 21।।

रुद्र, साध्यगण, वसुगण, रवि औ' पितर, उभय अश्विनीकुमार।
मरुत् असुर, गन्धर्व, यक्षगण लखते विस्मित रूप अपार।। 22।।

बहु भुज, बहु पद, नेत्र बहुत–से, पेट–जाँघ बहु, दन्त कराल।
देख रूप यह, व्याकुल हैं सब, मैं भी व्याकुल, दीनदयाल।। 23।।

गगनस्पर्शी, बहुरंगी औ' मुँह खोले, ये नेत्र विशाल।
व्याकुल हूँ तव रूप देख यह, शान्ति न मिलती, मुझे कृपालु।। 24।।

दन्त भयंकर देख तुम्हारे, मुख ज्वालामय प्रलय–समान।
दिग्भ्रम होता, मन अशान्त है अब प्रसन्न हो, दयानिधान।। 25।।

हे भगवन्! धृतराष्ट्र–तनय ये तथा अनेकों ये भुवनेश।
भीष्म पितामह, कर्ण, द्रोण भी मुख्य वीरगण मम, अखिलेश।। 26।।

दंत–युक्त तव मुख कराल में वेग–सहित हैं सब जाते।
तव दाँतों में चूर्णित–मस्तक लगे हुए कुछ दिखलाते।। 27।।

जैसे जल–प्रवाह नदियों के सागर में गिरते जाते।
उसी भाँति तव ज्वलित मुखों में गिरते ये सब दिखलाते।। 28।।

दीप–शिखा में वेग–सहित ज्यों आ पतंग जलते जाते।
वैसे ही मरने को वे सब तव मुख के अंदर आते।। 29।।

ज्वलित मुखों में इन्हें निगलकर चाट रहे तुम जीभ अभी।
विष्णु! तुम्हारी उग्र प्रभा से चमक रहे हैं लोक सभी।। 30।।

उग्ररूप तुम कौन? बता दो, तुमको करता प्रभो! प्रणाम।
तुम्हें जानने की इच्छा है, ज्ञात न तव लीला अभिराम।। 31।।

श्रीभगवानुवाच :
लोक-विनाशक महाकाल हूँ, करने आया नाश अभी।
कुछ भी करे नहीं तू, फिर भी मर जाएँगे वीर सभी।। 32।।

इसीलिए उठ, लड़कर यश पा, रिपु को जीत, भोग तू राज।
मैं इन-सबको मार चुका हूँ, बस निमित्त, बन जा तू आज।। 33।।

द्रोण, जयद्रथ, भीष्म पितामह, कर्णादिक वीरों को भी।
मार चुका हूँ, मार इन्हें तू, होगी तेरी जीत अभी।। 34।।

संजय उवाच :
केशव की ये बातें सुनकर, कर जोड़े औ' कम्पित तन।
कर प्रणाम, भयभीत, सगद्‌गद, बोला फिर कुन्तीनन्दन।। 35।।

अर्जुन उवाच :
तव यश-कीर्तन में यथार्थ है जग का हर्ष तथा अनुराग।
करते सिद्ध प्रणाम, भीत ये राक्षस चले चतुर्दिक् भाग।। 36।।

तुम हो कारण ब्रह्मा के भी, सब से हो तुम श्रेष्ठ कहीं।
परे असत्-सत् देव देव हो, कैसे करें प्रणाम नहीं।। 37।।

आदि-देव हो, पुरुष पुरातन, अखिल विश्व के परम निधान।
ज्ञाता हो तुम तथा ज्ञेय हो, व्याप्त तुम्ही से विश्व महान्।। 38।।

क्रमशः

स्वास्थ्य

योग - आसन

हस्तपादांगुष्ठासन

विधि

इस आसन के करने के लिए भी पहले समकाय शिरोग्रीव की विधि अनुसार बिल्कुल सीधा समसूत्रता के ढंग से खड़ा हो जाना चाहिए, उसके बाद अपने एक पैर को जमीन पर बिल्कुल सीधा खड़ा रहने दें व उसके विपरीत पैर को उसी ओर के हाथ से पकड़ कर जंघा की सीध में बिल्कुल सीधा तनाव के साथ सहारे कर सामने की ओर सीधा करके पकड़े रखें और उसके विपरीत ओर के हाथ को अर्ध चन्द्राकार से कटि देश में जमा कर रखे उसको हस्तपादांगुष्ठासन कहते हैं। इस आसन के करने की आम प्रचारित विधि उपरोक्त ही है किन्तु यदि इस आसन को उपरोक्त विधि से न करके थोड़ा अन्तर देकर किया जाय तो भी उत्तमोत्तम

बनता है और परिणाम में दोनों तरीकों से करने पर फल समान ही है।

दूसरी विधि

समसूत्रता से बिल्कुल सीधे खड़े हो जायँ व अपने बायें पैर को दाहिने पैर जंघा तक मोड़कर ले जाकर दाहिने हाथ से उस मुड़े हुए बायें पैर का (अँगूठा पकड़ कर जंघा की सीध में तनाव के साथ बिल्कुल से कर दें व अपने बायें हाथ को कटि प्रदेश में अर्ध चन्द्राकार जमाकर रखें। इसी प्रकार दाहिने पैर को बाँयी जंघा की ओर झुका कर बायें हाथ से पकड़ कर सामने की ओर तनाव के साथ सीधा कर दें। दोनों पैरों के तनाव में किसी भी प्रकार का कोई अन्तर न आने पाये। इसी का नाम ***हस्तपादांगुष्ठासन*** है। इन दोनों विधियों में पहले वाली विधि के अभ्यासी के सामने की ओर सीधे (अँगूठा पकड़ कर सीधे किये हुए) किये हुए पैर के जानू पर अपने शिर या नाक को लगाने का भी प्रयत्न कर सकते हैं किन्तु यह प्रयत्न सुसाध्य नहीं है। अनवरत अभ्यास करने पर थोड़े समय बाद अवश्य अभ्यस्त हो जायेंगे।

करने का समय

अपने शरीर की स्थिति के अनुसार आधे मिनट से लेकर 2 या 3 मिनट तक अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

फल

यह आसन अपना पहिला प्रभाव मलमूत्र विसर्जन नाड़ियों पर डालता है व उसके साथ छोटी और बड़ी आँतों पर इसका प्रभाव पड़ता है। अतः कोष्ठबद्धता को दूर करता है। बहुमूत्रादि रोगों में लाभदायक है। मन्दाग्नि को दूर करता है। मेरुदण्ड में दृढ़ता देता है। शरीर के पृष्ठ भाग में होने वाले वात रोगों में लाभदायक है।

• • •

सच्चिदानन्द रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नतः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।।

अर्थात् सच्चिदानन्द रुप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं।

अद्भुत शक्तियों का केन्द्र मन

– श्री ओमप्रकाश पालीवाल

मन में कितनी अपार शक्ति छिपी है इसको विषयासक्त प्राणी क्या जाने? मन की शक्तियों का यथार्थ परिचय तो एक समाधिस्थ योगी से ही लग सकता है। विश्व एक शक्ति का विलास है और उस शक्ति का केन्द्र है हमारा मन। योगियों को छोड़कर समस्त विश्व के प्राणी अपनी इस महान शक्ति से विमुख हो गये हैं। चिरकाल से इसका उचित उपयोग न करने के कारण यह शक्ति सुप्त हो गयी है; बस हमारी समस्त कमजोरियों का यही कारण है।

मन की सुषुप्त शक्ति को जगाने तथा जगी हुई शक्ति का उचित उपयोग करने का एक मात्र साधन योग है, इसमें किसी को भी सम्भवतः कोई आपत्ति न होगी। अणिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व वशित्व, आकाश–गमन आदि सिद्धियों का योग–शास्त्रों में विस्तार से वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों सिद्धियाँ हैं। अब थोड़ा इस विषय पर विार यह करना है कि अगर ये सिद्धियाँ नहीं है तो फिर ये आयीं कहां से हैं? जो नहीं है उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, यह गीता का अकाट्य सिद्धान्त है मेरी समझ में तो इसका अर्थ यही हुआ कि ये शक्तियाँ हम सभी में पूर्व से ही थीं। वह सुप्तावस्था में या अशांत अवस्था में थीं, यह दूसरी बात है। योग साधना करने पर वह प्रगट हो गईं उसका मतलब यह नहीं हुआ कि साधना ने उन्हें जन्म दिया, इसका उत्तर स्पष्ट है कि साधना ने केवल उन्हें जागृत कर दिया या दरसा दिया। उदरहण के लिए कहीं किसी अन्धकार युक्त गृह में अनन्त धनराशि छिपी पड़ी है। उसको प्रकाश के द्वारा प्राप्त कर लिया गया, तो इसका मतलब यह नहीं हुआ कि प्रकाश ने उस राशि को वहाँ पैदा किया हो। वह तो वहाँ पहले से ही वर्तमान थी। प्राप्त इसलिए नहीं थी कि वहाँ अन्धकार था। प्रकाश के होते ही वह वस्तु दिख पड़ी और उसको ग्रहण कर लिया गया। ठीक यही बात यहाँ घटित होती है।

साधन क्या है? तथा सभी साधनों का क्या उद्देश्य होता है? आदि सभी प्रश्नों के उत्तर यही है कि किसी एक विशेष भावना को लेकर मन को उसमें लगा देना स्थिर कर देना। मन जिस भावना को लेकर स्थिर होता है, वही शक्ति उसमें जागृत हो जाती है। साधन प्रधान नहीं, साधन के अभाव में गुरु कृपा से भी ऐसा हो सकता है। इस सब में प्रधानता है केवल मन की एकाग्रता की। शास्त्रों में जहाँ भी सिद्धियों का वर्णन आया है, वहाँ केवल भावना को लेकर उस पर एकाग्र होने को ही प्रधानता दी गयी है। उदाहरण के लिए आकाश, तन्मात्रापर मन को एकाग्र करने से आकाश, गमन और सिद्धि प्राप्त होती है। बल में मन को एकाग्र करने से योगी में हस्ति आदि के समान बल आ जाता है। सूर्य में मन एकाग्र करने से योगी को सारे सौर मण्डल के सभी ग्रहों का ज्ञान हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा भी बहुत सी सिद्धियाँ होती हैं, लेकिन प्राणायाम भी

बिना मन संयम के हो ही नहीं सकता। मान लीजिए कि एक प्राणायाम में प्राणसंयम बताया गया है, अब आप भ्रूमध्य में प्राण संयम कैसे करेंगे? इसके लिए मन के द्वारा ही वहाँ प्राण को स्थिर होने की कल्पना करनी होगी। यही कल्पना स्थिर होने पर साकार हो जाती है।

मन को छोड़कर आप प्राणायाम करने बैठिये। अच्छे से अच्छे अभ्यासी के लिए दो मिनट श्वांस रोकना कठिन हो जायेगा। अब आप प्राण की को तो छोड़ ही दीजिए और मन को एकाग्र कीजिए। जितनी देर तक मन चंचल न होगा, स्वाभाविक रूप से प्राण रुका रहेगा। जैसा कि कहा भी है :— ***यत्र मनो लीयते, तत्र प्राणो लीयते।।*** मन संयम के द्वारा प्राणायाम करने के इच्छुक आरम्भिक साधकों के लिए यह अत्यन्त सरल है कि वे श्वास की गति का मन के द्वारा निरीक्षण करें। श्वांस को न तो रोकने की चेष्टा करें और न चलाने की। पर स्मरण रहे, मन को वहां से भागने न दिया जाय। वे देखेंगे कि ऐसा निरीक्षण आरम्भ करते ही प्राण रुक जायेगा और जब तक मन चंचल न हो, कुम्भक टूटेगा ही नहीं। इस तरह के स्वाभाविक प्राणायाम से कोई हानि और कष्ट नहीं होता है। मन में जब काम, क्रोधादि विकारों की प्रबलता होती है तो ऐसी स्थिति में मन को स्थिर करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में कोई प्रतिगामी भावना उठाकर मन को उधर मोड़ा जाय। किन्तु विकारों के प्रबल वेग की स्थिति प्रतिगामी भावनाओं का उठाना भी सरल नहीं होता। ऐसे समय में तो अपना एक अनुभूत साधन है, जब भी विकारी भावनाओं की मन में प्रबलता हो तो आप श्वांस प्रश्वांस पर या जिव्हा द्वारा ''ॐ नमः शिवायः'' या ''राम नाम'' का जाप करिये। थोड़ी देर में वह वासना के वेग उसी तरह दब जायेगा जिस प्रकार उफनता हुआ दूध पानी के छींटे देने पर बैठ जाता है।

किसी भी वस्तु या भावना का हम पर जो प्रभाव पड़ता है, हमारे ही मन की मान्यता से भला बुरा पड़ता है। उदाहरण के लिए सांप से भयभीत मन वाले व्यक्ति का यदि अंधेरी रात्रि में किसी पर पैर पड़ जाय और उसके द्वारा उसके पैरों में थोड़ा खरोंच आ जाय, तो उसके अनुसार 'मैं सांपने काट खाया' वह चिल्लाया और मूर्छित होकर गिर गया। उसके मन में यह निश्चयात्मक धारण बन गई कि मुझे सांप ने काटा है। रक्त की गति भी वैसे ही बदल गई, फल यह हुआ कि शरीर नीला पड़ गया और वह व्यक्ति विषक लक्षणों से अभिभूत होकर मर गया। दूसरे रूप में अन्य दूसरे आदमी को साधारण सांप ने काट लिया। उसने सोचा 'चूहा होगा' संयोग वश पास ही से एक चूहा निकल पड़ा। विश्वास दृढ़ हो गया। मन में विषय विरुद्ध धारणा की। शरीर में थोड़ी गर्मी आयी, उसने सोचा आज की थकावट का प्रभाव है। फल यह हुआ कि जो भी थोड़ा बहुत विष था वह पच गया और उसे पता भी न चला। मन की भावना का यह सुन्दर प्रमाण है। मुझे एक सुप्रसिद्ध डाक्टर ने बताया कि ''सांप के काटने पर जितने लोग भारत में नहीं मरते देखे होंगे जितने उसके भय से मर जाते हैं।''

बात यथार्थ में यह है कि जब बाहर से सभी वस्तुएं हमारे मन से ही आयी हैं। हमारा मन ही इस विश्व का निर्माता, तथा यथावत भोक्ता है। बाह्य पदार्थों में जो शक्ति दृष्टि–गोचर हो

रही है वह भी हमारे भीतर से ही आयी है। दृढ़ एवं अटल संस्कार मन में होने के कारण अब हम उन वस्तुओं का वह प्रभव मानने लगे है। आज हम सोचते हैं कि प्रहलाद की कैसे अग्नि शीतल हो गई, वह समुद्र में क्यों नहीं डूबा। जहर का प्याला मीरा को अमृत कैसे बन गया आदि। पर हम यह भूल जाते है कि उनका कितना अटल विश्वास इन प्रतिकूलताओं पर विजय पाने के लिए था। उनका मन उनका न होकर उनके इष्ट का था। उनका मन पिण्डी मन न रहकर विराट पुरुषों के मन से मिलकर एक हो चुका था।

विश्व में यदि कोई शक्ति है तो वह है हमारी मन शक्ति। प्रत्येक मनुष्य में वह शक्ति विद्यमान है। किन्तु उस शक्ति का प्रत्येक मनुष्य में जागरण क्यों नहीं देखने को मिलता। इसका कारण है उनमें दृढ़ मनोबल एवं अटल विश्वास की कमी तथा उस शक्ति के परिचय का अभाव आदि। देखने में मन सभी प्राणियों के पास है और सभी मनों में परमात्मा का प्रकाश प्रस्फुटित होता है फिर भी एक व्यक्ति की मन शक्ति अधिक है और एक की कम। विचारने की बात है कि आखिर यह विषमता क्यों? एक व्यक्ति कोई साधन करने बैठता है तो उसे बहुत शीघ्र सफलता मिलती है और दूसरा व्यक्ति लाख सिर पटकने पर भी सफल नहीं होता। एक व्यक्ति को सभी सिर झुकाते हैं उसकी बात मानते हैं और एक व्यक्ति को गाली देते है तथा उसकी बात तक सुनना पसंद नहीं करते। इसका मुख्य कारण है मन की 'निर्मलता' द्वारा प्राप्त शक्ति। जिस व्यक्ति का मन जितना निर्मल होगा, उसका मन उतना ही अपने लक्ष्य में एकाग्र होगा। साधन सफलता सभी एकाग्रता पर निर्भर करती है। इसके विपरीत विकारी मन उतना ही चंचल व शक्तिहीन होगा। जो व्यक्ति दृढ़ निश्चयी है, जिसके हृदय पर बचपन से ही निर्भीकता और आत्म–विश्वास के संस्कार पड़े है, साथ ही वे ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिससे, डर, भय, लज्जा आदि मनोबल को गिरने वाले संस्कार मन पर पड़े। वह व्यक्ति जिस किसी मानसिक साधना में शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त आहार, विहार एवं संग का भी मन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। अतः जिस व्यक्ति को मानसिक साधना करनी हो वह अपने मनोबल को प्राप्त करे। दृढ़ एवं प्रबल निश्चय से साधन करने पर सभी पुराने संस्कारों पर विजय पाना सम्भव है।

जो लोग शंकालु है, जिन्हें बात–बात में सन्देह हो, जो अपने पर विश्वास नहीं करते और सदा दूसरों से आशा करते हैं, जिनके आचरण शुद्ध नहीं वे कुछ समय के लिए संयत होकर साधन कर लें तो उसमें सफलता नहीं होती। यदि सफलता भी होती है तो काफी देर में।

जिस व्यक्ति में आत्म विश्वास की मात्रा जितनी अधिक होगी और जो त्याग के लिए जितना अधिक उद्यत होगा। वह उतलनी ही मानसशक्ति का सम्पादन कर सकेगा। इस प्रकार हम देखते है कि मनुष्य के अन्दर की समस्त शक्तियों का विकास मन की एकाग्रता पर निर्भर है और सभी क्षेत्रों में मन की एकाग्रता ही सफलता की जननी है।

●●●

साधना करने का सर्वोत्तम समय - कलियुग

— केशव देव उपाध्याय

श्री विष्णु पुराण में एक आध्यात्मिक प्रसंग का वर्णन किया गया है, जिसमें कलियुग की महत्ता का वर्णन किया गया है और यह रहस्य समझाने का प्रयत्न किया गया है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग में, कलियुग स्वर्गादिक लोकों की प्राप्ति एवं मोक्ष प्राप्त करने का सबसे उत्तम युग है। उस कथानक का वर्णन निम्न प्रकार है –

एक बार कलियुग में, सहस्त्रों मुनि मिलकर विचार करने लगे कि किस युग में थोड़ा सा पुण्य भी महान फल प्रदाता है। मुनिगण जब आपस में विचार–विमर्श के बाद कोई निर्णय नहीं कर सके, तब निर्णय के लिए महर्षि वेदव्यास जी के पास पहुँचे। मुनिगण जिस समय महर्षि वेदव्यास जी के पास पहुँचे, उस समय श्री व्यास जी गंगा जी में स्नान कर रहे थे। मुनि मण्डली उनकी प्रतीक्षा में श्री गंगा जी के तट पर स्थित एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी। वृक्ष के पास बैठे मुनियों ने देखा कि श्री व्यास जी, गंगा जी के जल में डुबकी लगाकर जल से ऊपर उठे और उन्होंने ''कलि: साधु:'', ''योषित: साधु:'' और शूद्र: साधु:'' का उच्चारण किया एवं पुन: डुबकी लगायी। श्री गंगा जी के जल से ऊपर आकर उन्होंने फिर उन्हीं शब्दों का उच्चारण किया एवं फिर गंगा जी के जल में डुबकी लगायी एवं इस बार श्री व्यास जी श्री गंगा जी से बाहर आये। श्री मुनिगण यह सब बड़े ध्यान से सुन रहे थे एवं सुनकर भ्रम में पड़ गये। उपरोक्त सुक्तियों का भावार्थ क्रमश: इस प्रकार था, कलियुग सबसे अच्छा युग है, स्त्री शरीर सबसे अच्छा शरीर है और शूद्र योनि सबसे अच्छी योनि है। मुनिगण संदेश का निवारण करके निमित्त महर्षि वेदव्यास के पास आये थे परंतु उपरोक्त वाक्यों को सुनकर उनकी भ्रम एवं संशय द्विगुना हो गया। तदनन्तर स्नानोपरान्त श्री व्यास जी के नित्यकर्म से निवृत्त होने के बाद, जब अपने आश्र में आये तब मुनिगण भी उनके समीप अपनी जिज्ञासा शान्त करने हेतु पहुँच गये। सब मुनिगण जब यथा योग्य अभिवादन के बाद अपने आसनों पर विराजमान हो गये, तब श्री व्यास जी ने उस मुनि समुदाय से आगमन का उद्देश्य पूछा। मुनियों ने प्रार्थना किया कि हम लोग आप से एक संदेह का समाधान कराने की नीयत से आये हैं। परंतु उस संदेह को फिलहाल छोड़ दिया जाय, इस समय हमें यह समझाने की कृपा की जाय कि आपने स्नान करते समय कई बार कहा कि कलियुग श्रेष्ठ है, शूद्र श्रेष्ठ है और स्त्रियां श्रेष्ठ हैं। इसका क्या रहस्य है? यह बात यदि गोपनीय न हो तो हमें बतलाने की कृपा की जाय।

श्री व्यास जी ने उनकी बातों को सुनकर कहा कि मैंने कलियुग, स्त्री और शूद्र की जो हकीकत का वर्णन किया है, उसका रहस्य इस प्रकार है। जो पुण्य सत्ययुग में दस वर्ष तक नियमित जप–तप–पूजा और धार्मिक कृत्यों से प्राप्त होता है, वही त्रेतायुग में एक वर्ष की

नियमित जप–तप–पूजा अर्चना से मिलता है, वही द्वापर में एक माह की नियमित आध्यात्मिक साधना से मिलता है और उतना ही पुण्य कलियुग में मात्र एक दिन की साधना एवं नाम जप संकीर्तन से प्राप्त होता है। इस प्रकार कलियुग आध्यात्मिक साधकों के लिए सबसे उपयुक्त युग है। इसी रहस्य को सन्तशिरोमणि महात्मा श्री तुलसीदास द्वारा सरल एवं सुबोध भाषा में समझाया गया है कि कलियुग में मानस पुण्य तो होता है परंतु मानस पाप नहीं होता। तात्पर्य यह कि यदि आपने कोई धार्मिक आयोजन करने का मन बनाया एवं किसी कार्य बस उसे पूर्ण नहीं कर सके तो उसका आंशिक पुण्य आपको मिल जायेगा। साथ ही आपने कोई पापकर्म करने का मन बनाया एवं उसे कार्यरूप में परिणत नहीं कर सके तो उस पाप से आप बिल्कुल अछूते ही माने जायेंगे। जो फल सत्ययुग में ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञ तथा द्वापर में देवार्चन करने से प्राप्त होता है, वही कलियुग में नाम संकीर्तन से मिल जाता है। कलियुग में थोड़े से परिश्रम से ही महान धर्म की प्राप्ति हो जाती है। इन कारणों से मैंने कलियुग को, श्रेष्ठ कहा, ऐसा वेदव्यास जी ने समझाया।

शूद्र को श्रेष्ठ कहने का कारण बतलाते हुए, श्री व्यास जी ने कहा कि द्विज को पहले ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और तब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ–दानादि करने पड़ते हैं। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन एवं व्यर्थ व्यवहार उसके पतन के कारण हो सकते हैं। अतः उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक होता है। सभी कार्यों में विधि–विधान का ध्यान रखना पड़ता है, और विधिविपरीत करने से उन्हें पाप लगता है। द्विज भोजन एवं पानादि भी अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकते। उन्हें सम्पूर्ण कार्य में परतंत्रता ही रहती है। वे अत्यन्त क्लेश से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जिन्हें केवल मंत्रहीन पाकयज्ञ का ही अधिकार प्राप्त है, वह शूद्र द्विज सेवा से सद्गति प्राप्त कर लेता है; अतः शूद्र द्विज की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शूद्र के लिए भक्ष्याभक्ष्य और पेयापेय का नियम भी द्विज जैसा कठोर नहीं है।

स्त्रियों को श्रेष्ठ कहने का कारण बतलाते हुए श्री व्यास जी ने कहा कि पुरुष जब धर्मानुकूल उपायों द्वारा प्राप्त धन से दान और यज्ञ करते हैं एवं अन्य कष्टसाध्य व्रतोपवासादि करते हैं, तब पुण्य पाते हैं परंतु स्त्रियाँ तो तन–मन–वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान ही शुभलोकों की पात्रता बना लेती हैं। महर्षि वेद व्यास जी ने आगे समझाया कि उपरोक्त कारणों से ही हमने स्त्री जाति को पुरुष से श्रेष्ठ कहा था। महर्षि वेदव्यास जी ने स्त्री जति के सम्बन्ध में आगे बतलाया कि यदि कोई स्त्री मन–वचन और कर्म से केवल अपने पति की सेवा करे एवं पूर्ण पतिव्रत का पालन करे तो उसमें आध्यात्मिक शक्तियों का स्वतः विकास हो जाता है। इस रहस्य को समझाने के लिए महर्षि वेदव्यास ने एक आध्यात्मिक प्रसंग सुनाया जिसका भावार्थ निम्न प्रकार है।

कौशिक नाम के एक ब्राह्मण थे। वह पूर्ण रूपेण ब्रह्मचारी थे। एक दिन वह पीपल के पेड़

के नीचे बैठे हुए वेद पाठ कर रहे थे। इसी समय उनके सिर पर किसी पक्षी ने बीट कर दी। ऋषि कौशिक ने ऊपर देखा तो पेड़ की डाल पर उन्हें एक बगुला दिखलाई दिया। कौशिक ऋषि ने सोचा कि इसी नीच बगुले की यह करतूत है। वे बहुत क्रोध के वशीभूत हो गये। उनकी क्रोध भरी दृष्टि बगुले पर पड़ते ही वह तत्काल जलकर भस्म हो गया तथा पृथ्वी पर गिर पड़ा। बगुले के मृत शरीर को देखकर ऋषि कौशिक का मन उद्विग्न हो उठा। उन्हें बड़ा पछतावा होने लगा। कौशिक बड़े पछताये की एक निर्दोष पक्षी को मैंने मार दिया। मैंने क्रोधमें आकर यह पापकर्म कर डाला। इतने में भिक्षा का समय हो गया एवं वह भिक्षा के लिए निकल पड़े। एक घर पर वह भिक्षा के लिए खड़े हुए। घर की मालकीन आँगन में बर्तन साफ कर रही थी। ऋषि कौशिक ने सोचा कि वह सफाई का कार्य पूरा होने पर मेरी तरफ ध्यान देगी। किंतु इतने में स्त्री का पति, जो किसी काम से बाहर गया हुआ था, लौट आया। आते ही अपनी पत्नी से बोला, 'बड़ी तेज भूख लगी है, खाना परोसो।' पति की बात सुनते ही गृहपत्नी ऋषि कौशिक की परवाह न करके, पति की आज्ञा पालन में लग गई तथा उसे खाना परस कर पंखा झलने लगी। कौशिक द्वार पर ही खड़े रहे। जब उस स्त्री का पति भोजन कर चुका, तब वह ऋषि के लिए भिक्षा लेकर आयी।

उस स्त्री ने ऋषि कौशिक को भिक्षा देते हुए कहा, ''महाराज! आपको बहुत देर ठहरना पड़ा, क्षमा कीजिएगा।'' स्त्री द्वारा अपने प्रति की गई लापरवाही के कारण कौशिक काफी क्रोध में थे एवं बोले, 'देवी! मुझे और बहुत घरों में जाना है। यह तुम्हारे लिए उचित नही था कि तुमने मुझे इतनी देर ठहराये रखा।'' स्त्री ने कहा, ''ब्राह्मण श्रेष्ठ! पति की सेवा में लगी रही, इसी कारण कुछ देर हो गई, अपराध के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।''

ऋषि कौशिक को अपने चरित्र तथा तप पर बड़ा घमंड था। वह उस स्त्री को उपदेश देने लगे। माना की पति की सेवा पहल करना स्त्री का धर्म है किंतु ब्राह्मण का अनादर करना भी तो अनुचित है। मालूम होता है कि तुम्हें अपने पतिव्रत होने का बड़ा घमंड हो गया है जो मैं अभी समाप्त किये देता हूँ। इतना कहरक ज्योंहि ऋषि कौशिक ने हाथ में श्राप देने के लिए जल लिया, उस पतिव्रता औरत ने कहा, ''ब्राह्मण सावधान! बगुला समझ कर श्राप देने की गलती मत करना वरना तेरी पूरी आध्यात्मिक शक्ति स्वतः मेरे पास आ जावेगी।'' ऋषि कौशिक यह सुनकर किम् कर्तव्य विमुढ़ हो गये एवं उसी पतिव्रता स्त्री से बार–बार क्षमा याचना की। ये है पूर्ण पतिव्रता की ताकत। अन्त में एक शिक्षा प्रद श्लोक के साथ, उपरोक्त रहस्य यहीं समाप्त है–

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद वा। वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम्।।
श्रद्धातव्यं श्रद्धधानेन नित्यं। न श्रद्धिनं जन्ममृत्यु विशेताम्।।

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रीय, शूद्र अथवा नीच वर्ण में उत्पन्न हुए प्राणियों से भी यदि ज्ञान मिलता हो तो उसे प्राप्त करके श्रद्धालु प्राणी को उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए। जिनके अन्दर अगाध श्रद्धा है, उसे जन्म–मृत्यु का भय नहीं सताता। इति।

●●●

राजकुमार को प्राणदान

– जगदीश राए बंसल

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई धाम से सम्बन्धित हमारे एक साधक गुरुभाई जी का नाम श्री रघुराज है। श्री रघुराज जी मूलरूप से इसी भाग्यशाली गांव संवाई के निवासी है। वर्षों से अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की चरण–शरण में रहने के कारण भाई जी को गाने बजाने एवं कथा–वार्ता का पुराना आशीर्वाद प्राप्त है। अकारण दयालु अनाथ नाथ की भाई रघुराज पर अनेकानेक कृपाएँ हैं। जो श्रीमान् जी की मुस्कान में ही निहित है। फिर भी प्रसंगवश एक गुरुकृपा श्री रघुराज जी ने अपनी बहिन से सम्बन्धित दिनांक चार मार्च 2010 को श्री सिद्धगुफा प्रांगण में जगतात्मा त्रिजगपावन भगवान श्री कृष्ण–पंचाली की कथा के पश्चात् सुनाई, जो भाई जी के शब्दों में ही लिखने का प्रयास किया जा रहा है।

'यह कृपा प्रसंग सन् 1959 का है। मेरी एक लाडली बहिन का नाम शारदा देवी है। शारदा बहिन का विवाह खुर्जा निवासी श्री राम सिंह के साथ बड़े लाड़ प्यार से किया था। शादी होने के पश्चात् कुछ समय तो बहिन जी का बहुत आराम से व्यतीत हुआ। मगर समयानुसार शीघ्र ही शारदा को सन्तान न होने के कारण चिन्ता सताने लगी। हर समय स्वयं में दीन हीन मन कर रहने लगी। जगतनियन्ता श्री प्रभु जी एवं परम करुणा निकेतन गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के श्री चरणों में आर्त पुकार करती रहती कि मैं कब माँ बनूंगी? इस आंगन में किलकारियां लगेंगी? कब लाला को अपने आंचल में भरुंगी... इत्यादि। इसी मध्य कभी–कभी एकान्त में आँखों से बदरिया बरसा लेती। कभी प्रभु जी के प्रति इस प्रकार गुनगुना लेती थी–

श्री सिद्धगुफा का चोला मैंने ओढ़ लिया
अपना जीवन श्री चरणों में जोड़ दिया।।
कैसे तुझे रिझाऊं, जो एक ललना पा जाऊं।
मैं आर्त पुकार लगाऊं, जो बार–बार याद दिलाऊं
कि आंचल फैला ही लिया। श्री सिद्ध...
बाग वाले बाबा, मेरे सोए भाग जगा दे
एक हँसता लाला देकर, घर में रौनक ला दे
कि शरणा पकड़ ही लिया। श्री सिद्ध...
एक अर्जी है गुरुजी, मुझे इन्कार ना करना।
मैं शरण में पड़ी हूँ तेरी , प्राण मेरे मत हरना।।
कि डोरी सौंप ही दिया। श्री सिद्ध ...

आ गई लहर शिवा के मन में – हुआ बहिन का भाग्य सवाया। दिन राम मिलन का आया।।

एक प्रात: भोर में शारदा बहिन, सैर करने के लिए घर से निकली। यकायक मकान के सामने खड़े एक वृक्ष की तरफ से आवाज सुनाई दी। लल्ली शारदा!, इधर आ, मुझे पहचानती नहीं? मुझसे बोलती भी नहीं। बहन शारदा अचम्भित होकर उधर बढ़ी कि ये रस भरी वाणी कौन पुकार रहा है? कुछ आगे बढ़कर देखती है कि एक जटाजूट बाबा लाल लंगोट वाला, चिमटा लिए वृक्ष के चबूतरे पर विराजमान है। महान आश्चर्य! ये तो गुफा वाले दादा गुरुदेव जी महाराज हैं। बहिन शारदा ने प्रणाम किया। त्रयलोक पावन स्वयं नारायण महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज ने वहीं चबूतरे से रज उठाकर शारदा को देते हुए कहा कि 'लल्ली तुझे सन्तान चाहिए ना! ले, ये रज खा लेना और अब चिन्ता मत करना और हाँ लल्ली! तूने मुझे जल–पान की भी नहीं पूछी?' शारदा बहन कुछ संकुचाई और करबद्ध प्रार्थना की कि महाराज जी आईए, घर पधारिए, दूध आदि अभी तैयार कर देती हूँ। शारदा की यह प्रार्थना सुनकर दया सागर जी उठे। आदरणीया बहन जी आगे–आगे चली और जगत नियन्ता महाप्रभु जी पीछे–पीछे चले। बहन शारदा ने घर में प्रवेश किया और जैसे ही मुड़ कर देखने लगी, त्रिलोकी नाथ अन्तर्ध्यान हो चुके थे। शारदा बहिन प्रसाद पा कर तो इतनी खुश हुई कि चातक स्वाति का जल पा गई और चराचर के स्वामी दादा गुरु के अन्तर्ध्यान होने से इतनी व्याकुल हुई कि चन्द अस्त होने पर चकोर दुखी होती है।

गा कर गीत विरह के शारदा वेगवती सी चली जाती है।
दिल हल्का कर लेने को, उपलों से कुछ कह जाती है।।

उचित अन्तराल–अवधि पर शारदा बहन को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। आराध्यदेव चराचर के स्वामी गुरुदेव भगवान का जय–जय कार हुआ। घर खुशियों से भर गया और बधाईयों से गूँज उठा।

बधाई हो बधाई हम माँग रही मिठाई।
लल्ला रे जुग–जुग जिओ गुरुदेव की दुहाई।।

बच्चे को राजू उर्फ राजकुमार के नाम से जाना जाने लगा। एक बार बहन शारदा हमारे घर सवाई आई हुई थीं। यह नटखट राजू छ: वर्ष का रहा होगा कि एक विलक्षण घटना घटी। घटना के दिन मैं दिन का भोजन करने आश्रम से घर गया, तो कोहराम मचा हुआ था। मेरे अजीज मनमोहक भांनजे का देहान्त हो गया। घर में किसी को सुध–बुध न थी। विशेषकर मेरी धर्मपत्नी का विलाप उपस्थित समुदाय को रुला रहा था। वह क्या–क्या कह भी रही थी–

मेरे राजू बेटा, तेरा यह हाल
मामी कह कर बोल मेरे लाल

कलेजा फाड़ कर मर जाऊंगी
जलती चिता में कूद जाऊंगी
हे चन्द्रमोहन करतार
मामी कह....

मारना था तो खुरजा मर जाता
हमको यहाँ ना कलंक लगाता
क्यों दिया था प्रसाद।
मामी कह...

गुफा वाले इसके प्राण लौटा दे
मेरी चिन्ता को विराम लगा दे
हे अधम की सरकार।
मामी कह...

इस गमगीन वातावरण में जब मैंने और उपस्थित जनों ने महिलाओं को कुछ सान्त्वना देने का प्रयास किया तो मेरे घर वाली अश्रु बहाते हुए मेरा हाथ पकड़ कर आक्रोश से चिल्लाई कि 'ले जाओ इसे, सौंप दो उसीको जिसने यह दिया था, कह दो उसे मारना ही था तो शारदा को प्रसाद क्यों दिया था। ...मारते ही थे तो इसके घर खुर्जा मार देते, हमारी देहरी को कलंकित क्यों किया। ... और अब महाराज जी इसे प्राण–दान दीजिए वरना एक नहीं दो–दो चिताएँ जलेंगी।' ये दुखड़ा सुनकर और समय की नजाकत को देख कर, मैं राजू के मृत शरीर को कम्बल में लपेट कर आश्रम में ले आया। आश्रम में पत्रिका कार्यालय कमरा नं. एक के पास दोनों वृक्षों के मध्य मृत शरीर को लिटा दिया।

त्रिकालदर्शी गुरुदेव भगवान दिन का भोजन कर चुके थे। मैंने श्री चरणों में स्थिति से अवगत कराया एवं घर वाली द्वारा कही तीनों बातें भी कह डाली। श्री मुख ने गम्भीरता से पूछा कि और क्या कहा तुम्हारी धर्म पत्नी ने? मैं तो बस चुपचाप सरकार के चरणों में पसर गया।

आ गई लहर शिवा के मन में

कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले अन्तर्यामी गुरुदेव महाराज जी ने आदेशात्मक शब्दों में कहा कि "लल्ला मैं अपने कमरे में जाता हूँ, जब तक मैं दरवाजा न खोलूं, किसी को दरवाजे के निकट मत आने देना। इस बात का कड़ाई से पालन करना।" यह आदेश देकर शरणागत रक्षक स्वकक्ष में चले गए और अन्दर से कुण्डी बन्द कर ली। इधर मैं स्वयं पहरे पर तैनात हो गया। लीलाधारी की लीला तो देखिए कि उस दिन सामान्य से कहीं अधिक दर्शनार्थी आए। कई श्रद्धालु तो मुझसे नाराज होकर लौट गए। कई यहीं गुरुजी की प्रतीक्षा में बैठ गए। कुछ एक बार वापिस जा कर पुनः लौट आए। बहुत इन्तजार के पश्चात्,

लगभग सायं काल के समय त्रिजग पावन, भाग्य विधाता ने दरवाजा खोला। श्रद्धालु चरण वन्दना के लिए उमड़ पड़े। मगर आराध्यदेव जी ने ओजस्वी वाणी से कहा, देखो! मुझे कोई नहीं छुएगा, वहीं रहो, पहले मैं स्नान करूँगा, फिर आरती करूँगा, उसके उपरान्त बैठूंगा।' फिर एक आदरणीय ब्रह्मचारी जी को आरती की तैयारी करने का आदेश देकर स्वयं स्नानागार में चले गए।

स्नान से लौटते ही अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव भगवान ने तुरन्त आरती की। फिर आरती जल लेकर, राजू के मृत शरीर पर डाला। शरीर पर जल गिरते ही राजू की सांस चल पड़ी और एक हिचकी आई। अब अन्तर्यामी जी ने चम्मच से राजू के मुख में जल डाला। इस बार राजू उठ बैठा और प्राणदाता से आरती वाले जल को लेकर स्वयं पी लिया। आरती जल पीते ही बोला कि मामा घर चलो ...। मेरी आत्मा श्री चरणों में चिल्ला उठी—

दया करो गुरुदेव हम पर दया करो।
डूब गई थी यह नाव, दाता पार करो।।

ब्रह्मा विष्णु और महेश कहूँ
या अखण्ड मण्डला कार कहूँ
कह दूं कलि अवतार, हम पर दया करो
दया करो गुरु...

भक्तों के तुम आदि कारण
आए राजू के कष्ट निवारण
हे सिद्धों के सरदार, हम पर दया करो
दया करो गुरु...

इस प्रकार सर्व समर्थ ने आरती के जल द्वारा राजू को प्राणदान दिया। वर्तमान में 4–5 बच्चों के पिता श्री राज कुमार जी, त्रिलोकी नाथ स्वयं नारायण गुरुदेव जी के आशीर्वाद से रेलवे विभाग में करोड़ों के ठेकेदार हैं। जब भी आश्रम में आते हैं तो उस दिन को याद कर श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन करते हैं।

जय गुरु देव!

● ● ●

भक्तियोग

– ऋषि राम शर्मा

योगसाधना में भक्तियोग का विशेष महत्व है। परमार्थतः परमात्मा निर्गुण, निराकार, निराधार, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप है। वेदवाणी इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते हि अर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः॥

अर्थात् सभी प्राणियों में परमात्मा सर्वसाक्षी, निष्क्रिय, निर्गुण, सर्वाधार तथा चैतन्यात्मा के रूप में स्थित है, किन्तु माया के द्वारा उस पर आरोपित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विषय तथा चित्तवृत्तियों के रूप में ही अविद्यामोहित जीवों को दिखाई देता है। यही उसकी त्रिगुणात्मिका माया है। ठीक वैसे ही जैसे अबोध बच्चों को पर्दे पर प्रकाश पर आरोपित फिल्म-संसार दिखाई देता है। अतः मायारचित संसार में मायामोहित जीव की मायिक बन्धन से मुक्ति अत्यन्त कठिन असम्भव सी है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात् अज्ञानी जीव ही परमात्मा को साकार समझते हैं, क्योंकि उन्हें परमात्मा के सर्वनियन्ता तथा सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान नहीं है। अज्ञानी जीव परमात्मा की त्रिगुणात्मिका माया के स्वरूप को भी नहीं समझ सकते और न मायिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। माया से मुक्ति पाने के लिए तो मायावी परमेश्वर की शरणागति परमावश्यक है। शरणागति के लिए परमात्मा ने भक्तियोग का विधान किया है, किन्तु भक्तियोग की ब्रह्मधारा केवल सद्गुरु के चरणारविन्दों से प्रवाहित होती है। अतः ईश्वरभक्ति तथा गुरुभक्ति के रहस्यों को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि गुरुतत्व तथा परमात्मतत्व भिन्न हैं या अभिन्न। भिन्नता द्वैतभाव का प्रतीक है और द्वैतभाव मायाकृत है और माया भ्रान्तिमूलक अविद्या है, नाम तथा रूप यानि सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थ एवं भाव गुणात्मक हैं और गुणों के क्रमपरिणामों का कार्यरूप हैं। इस विषय में वेद का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः॥
यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेगच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परमं पुरुषं उपैति दिव्यम्॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में हमारा चित्त ही परमात्मा की गुणमयी माया के द्वारा आकाश, सूर्यादि सहित स्वप्न के संसार की रचना कर देता है, पदार्थों की ग्राह्यता तथा ग्राहकता को निद्रा के अविद्याजनित आवरण में सत्य भासित करा देता है, ठीक उसी प्रकार हमारा चित्त ही जागृत संसार का व्यवहार कराता है। नाम तथा रूप की भ्रान्तिरूप अविद्या ही उसे सत्य भासित कराती है। इसीलिए जिस प्रकार नदियाँ रास्तों के अनेकानेक कष्ट झेलती हुई बहती चली जाती हैं और अन्त में अपना नाम तथा रूप से मुक्ति पाकर समुद्र में मिल जाती हैं तथ शान्ति प्राप्त करती हैं उसी प्रकार आत्मज्ञ विद्वान नामरूप की अविद्यारूपी माया से मुक्त होने पर परमात्मभाव रूप समुद्र में मिलकर अक्षय सुख तथा शान्ति को प्राप्त करता है। भगवान श्रीकृष्ण इसी सत्य को स्पष्ट करते हैं कि –

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।
य एतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् सिद्धयोगी हो जाने के बाद अविद्या तथा अस्मिता रूपी गुणविकारों से मुक्ति पाकर अपने आत्मस्वरूप को अन्तःकरण से भिन्न सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप में देख लेता है यानि विशुद्ध बुद्धि में अनुभव करता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि सृष्टि के समस्त सूक्ष्म तथा स्थूल पदार्थों का कर्ता केवल माया के गुण हैं और वह अपने को गुणातीत स्थिति में पाकर परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है और तभी वह सर्वाधार तथा सर्वव्यापक परमात्मा के साथ एकत्व प्राप्त कर उसी स्वरूप में अभिन्न होकर रमण करता है। अतः सिद्धयोगी सद्गुरु तथा परमात्मा एक ही आत्मतत्व के प्रतीक हैं। किसी एक स्वरूप की भक्ति स्वतः दोनों स्वरूप की भक्ति होती है। द्वैतभाव मिथ्या है, केवल शब्दों का व्यभिचार है। हमारे त्रिकालसत्य वेदशास्त्र भी यही आदेश देते हैं कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।
यं यं लोकं मनसा सम्विभाति। कामयति यांश्च कामान्।।
तं तं लोकं जयति तांश्च कामान्। तस्मात् आत्मज्ञं अर्चयेत् भूतिकामः।।
सः वेद एतत् परमं ब्रह्म धाम। यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये हि अकामाः। ते शुक्रं एतत् अतिवर्तन्ति धीराः।।

(मुण्डक उ. 3/21)

अर्थात् मोक्ष के जिज्ञासु को उस पूर्णआनन्द स्वरूप तथा ज्ञान तथा विज्ञान की प्रतिमूर्तिस्वरूप सद्गुरुदेव की अनन्य एवं अव्यभिचारिणि भक्ति करनी चाहिए जो उस परमात्मा का ही सगुणस्वरूप है जिसकी शक्ति पाकर सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसकी मायाशक्ति से प्रकट हुआ जगत समस्त चित्तों में देदिप्यमान है। वह आत्मज्ञ महापुरुष मन से जिस–जिस लोक का संकल्प करता है अथवा जिस–जिस कामना का संकल्प करता है, वह इच्छामात्र से उस लोक को प्राप्त कर लेता है और उसकी सभी कामनायें संकल्पमात्र से पूर्ण होती हैं। अतः जिज्ञासुओं को उसी की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि जो भक्त उस ब्रह्मज्ञाता पुरुष की निष्कामभाव से पूजा तथा अर्चना करते हैं वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। संसार के मनुष्यों का कल्याण करने के लिए ही परमात्मा स्वयं देहधारी सद्गुरुदेव के रूप में पृथ्वी पर विचरण करते हैं। जिज्ञासुओं के लिए यही परम सत्य है। भक्ति योग का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ताः उपासते। श्रद्धया परयोपेताः ते मे युक्ततमाः मताः।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः। अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्तः उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि नाचिरात पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।
मयि मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

अर्थात् जो जीव जिस–जिस भावना से मेरी भक्ति करता है, मैं भी अपने सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान मन से उसकी भक्ति करता हूँ यानि उसकी भावना को पुष्ट तथा पूर्ण करता जाता हूँ। इसी उपाय से जीव मेरे मार्ग पर अग्रसर होकर मेरे निकट आते जाते हैं। जो भक्त अपने मन को नित्य अनन्यभाव से मेरे परमात्मस्वरूप के चिन्तन तथा ध्यान में लगाते हैं तथा निष्कपट प्रेम से परिपूर्ण होकर चित्त को मेरे स्वरूप में लय तथा समाहित करते जाते हैं, वही भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। शरीरधारी होने के नाते कर्म तो करना ही पड़ता है किन्तु जो कर्मफल को मेरे समर्पण करते हुए मेरी प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर अनन्ययोग यानि अव्यभिचारिणी प्रेमभक्ति से परमात्मा की उपासना करते हैं, उन भक्तों को इस माया के भवसागर से पार करने के लिए मैं परमात्मा शीघ्र ही उनके चित्त में प्रकट होकर अपने ज्योतिमय स्वरूप की ज्ञानज्योति दे देते हैं। जब साधक अनन्यभाव से भक्ति करता है तब हृदय में गुप्त गुणातीत परमात्मा को भी प्रकट होना पड़ता है। इसके दो प्रमुख रहस्य हैं जो कि स्वयं परमात्मा के मुख से प्रकट हो गये हैं। प्रथम रहस्य है –

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं हि एतदुत्तमम्।।

तथा द्वितीय रहस्य है कि –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न च प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या ते मयि तेषु चाप्यहम्।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।

(गीता)

अर्थात् जब पूर्ण वैराग्य से सम्पन्न होकर लोक तथा धर्म के पापपुण्यात्मक सभी व्यवहारों का चिन्तन त्यागकर जब भक्त एकमात्र परमात्मा से रिश्ता बनाकर स्वरूपशून्यता में अपनी बुद्धि को परमात्मा के विज्ञानमय स्वरूप में प्रवेश करा देता है तब अहंभाव के लुप्त होने से परमात्मा में एकात्मता आ जाती है। इस प्रकार स्वतः ही परमात्मा की ज्ञानज्योति अन्तःकरण को प्रकाशित कर देती है। अन्यथा परमात्मा का न किसी से द्वेष है और न प्रेम है, वह तो सभी प्राणियों में समभाव में स्थित है। इसका कारण भी वेदों में स्पष्ट है कि –

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।

(श्वेता. उप. 6/8)

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम् यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

(श्वेता. उप. 3/7)

अर्थात् परमात्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे यानि उत्कृष्ट तथा सृष्टिकर्ता कार्यब्रह्म से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि यह दोनों शक्तियाँ उसके सर्वव्यापी स्वरूप से प्रकट हुई हैं। किन्तु उसका न कोई कार्य है और न कर्तव्य है, न कोई उसके समान है और न उससे अधिकतर तथापि वह प्रत्येक प्राणी में उसके शरीर के अनुकूल स्वरूप में विद्यमान है, समस्त विश्व का एकमात्र भरण–पोषण तथा धारण करने वाला है, क्योंकि उसके सच्चिदानन्द स्वरूप में ज्ञान, शक्ति तथा व्यापकता स्वभाविकी क्षमता है। अतः उसके इस आश्चर्यमय स्वरूप को जानकर जीव कृतकृत्य होकर अमृतत्व पा जाते हैं किन्तु अनादिकाल से मायानिद्रा में सुप्त जीव के चित्त में ऐसी अनन्य भक्ति का उदय एक दुर्लभ प्राप्ति है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
जनानां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।।

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों में निरन्तर कठोर तप, वेदान्तविज्ञान का स्वाध्याय तथा योग समाधियों का अभ्यास करते–करते जब अन्तःकरण में संचित पापकर्म क्षीण हो जाते हैं तभी शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मज्ञान की जिज्ञासा तथा भक्ति का उदय होता है। इस भक्ति के उदय होने में कर्मयोग का तथा क्रियायोग का विशेष योगदान है। इसके दो विशेष कारण भी हैं। प्रथम कारण तो यह कि जिस माया ने जीवों की उत्पत्ति की है वह माया परमात्मा से प्रकट हुई है अतः इस संसार का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर करता है, इसलिए जीवन का उद्देश्य अपने

कर्मों से उसकी प्रसन्नता ही होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने इस ओर संकेत भी किया है कि –

पुरुषः सः परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया।
यस्यान्तस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

(गीता 8/22)

यतः प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18/46)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

(गीता 8/14)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।

(गीता 3/19)

अर्थात् संसार के समस्त प्राणी जिसके सर्वव्यापक स्वरूप में स्थित हैं तथा जिसके चैतन्यस्वरूप से यह संसार प्रकट हुआ है, वह परम पुरुष परमात्मा केवल अनन्यभक्ति से जाना जा सकता है। जिसके दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप से समस्त चराचर जगत की उत्पत्ति हुई उसी की अपने निष्काम कर्मों से अर्चना करके आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव है, अन्य कोई उपाय नहीं। अतः नित्य निरन्तर अनन्य भाव से जो मनुष्य उस परमात्मा का समाहित चित्त से स्मरण करते हैं, वही युक्त योगी परमात्मभाव को प्राप्त करते हैं। अतएव आत्मसाक्षात्कार के लिए कर्मयोग की साधना अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग से तात्पर्य है कि फलासक्ति त्याग कर लोकहित में आसक्तिरहित मन से अपने कर्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुए चित्त को परमात्मा के स्वरूप में समाहित करना है।

कर्म तो प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं उनमें जीव की कर्तापन की भावना अज्ञान का द्योतक है। कर्म के साथ जीवात्मा की जो भावना रहती है कर्म का फल उस भावना का अनुसरण करता है। इसीलिए अज्ञानी के लिए कर्म बन्धन है तथा ज्ञानी के लिए परमात्मा की सेवा एवं पूजा है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का आदेश तथा संदेश है कि –

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योगः उच्यते।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! कर्मफल में जो आसक्ति है उसी से कर्मबन्धन तैयार होता है, क्योंकि आसक्ति वासना का रूप है और वासना चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाती है किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखते हुए जो कर्म किया जाता है उसकी सिद्धि तथा असिद्धि का चित्त पर प्रभाव नहीं पड़ता इसी को योग कहा जाता है। अतः योग में स्थित होकर कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। इस बुद्धिगत योग से पाप तथा पुण्य के परिचायक कर्मों से मुक्ति मिल जाती है और सुख–दुःख के रूप में कर्म का भुगतान नहीं करना पड़ता। यही कर्मयोग कहलाता है जिसके फलस्वरूप कर्मफल के भुगतान सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होकर ज्ञानी मनुष्य जन्म–मृत्यु के आवागमन से मुक्त होकर परमात्मा के अक्षय आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु कर्मयोग की सिद्धि के लिए क्रियायोग की आवश्यकता है, अन्यथा आध्यात्मिक मार्ग के अन्तराय तथा समाधि की अयोग्यता इस बुद्धियोग तथा कर्मयोग को सफल नहीं होने देंगे।

यह 'क्रियायोग' क्या है, इसकी परिभाषा महर्षि पतंजलि ने दिया है कि –

तपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च।।

(योगदर्शन 2/1,2)

संसार का सत्य यही है कि प्रकृति के रूप में परमात्मा की माया से यह पंचभूतादि जड़ सृष्टि प्रकट हुई जैसे कि हमारे चेतन शरीर से अचेतन बाल प्रकट होते हैं। इस जड़ स्थूल सृष्टि के साथ पंच महाभूतों से इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय तथा पंचक्लेशादि सूक्ष्म सृष्टि प्रकट हुई। यह स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि कूटस्थ तथा सर्वसाक्षी के रूप में परमात्मा के प्रवेश से चेतनमयी बन गयी, जैसे लोहा विद्युत से चुम्बकीय शक्ति पाकर शक्तिवान हो जाता है जिससे सभी विद्युतयुक्त मशीनें अपना – अपना कार्य करने लगती हैं। इस प्रकार हमारे चेतन शरीर कार्यरत तो हो जाते हैं किन्तु चित्त में विद्यमान माया की आवरण शक्ति आत्मा को अपना आलम्बन बनाकर उसे जीवात्मा का भी रूप दे देती है। इस जीवात्मा के माध्यम से माया के प्राणादि अनन्त भाव इस आश्चर्यमय जड़ तथा चेतन जगत के रूप में उदय–अस्त होते रहते हैं। इन रहस्यों को जानने के लिए चित्त में व्याप्त पंचक्लेशादि (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश) गुणविकारों को क्षीण करना तथा वैराग्य को पुष्ट करते हुए उसमें समाधिपरिणाम को लाना परमावश्यक है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्रियायोग परमावश्यक है जिसके तीन अंग हैं – 1. तप, 2. स्वाध्याय तथा 3. ईश्वरप्रणिधान। इन तीनों अत्यन्त महत्वपूर्ण अंगों पर हम संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। क्रियायोग का प्रथम अंग तप है। तप से स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर दोनों को बल मिलता है। तप की परिभाषा में कहा गया है कि –

द्वन्दसहनं तप:।। (योगदर्शन)

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्रयं परमं तप:।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरै:।

अफलकांक्षिभि: युक्तै: सात्विकं परिचक्षते।।

(गीता /7/17)

अर्थात् शरीर, मन तथा बुद्धि के द्वारा द्वन्दों को सहन करने के कर्म को तप कहते हैं। यह द्वन्द दो प्रकार के है। एक तो माया की विक्षेप शक्ति द्वारा संचालित कारण–कार्य रूपी गुणात्मक द्वन्द है तथा दूसरे क्लेशादि गुणविकारों द्वारा संचालित मानसिक द्वन्द हैं। इनके प्रभावों को समत्वभाव से सहन करना तपस्या है। इस तपस्या से शक्ति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता की वृद्धि का अभ्यास भी उत्कृष्ट तप है। यह तप सात्विक होना चाहिए जिसमें परमात्मा के प्रति श्रद्धाभक्ति के साथ केवल परमात्मज्ञान की जिज्ञासा ही होना चाहिए तथा अंशमात्र भी तपस्या के फल के रूप में किसी भी प्रकार की भोगवासना नहीं होना चाहिए। तप के साधन के रूप में परमात्मा ने हमें शरीर, वाणी तथा मन की सुविधायें प्रदान की है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने हमें गीता में यह संदेश दिया है कि –

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्य अहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।

भावसंशुद्धि इत्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात् कर्म करने में शरीर को सर्दी–गर्मी, घातप्रतिघात आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है, मन को सुख–दु:ख तथा अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है तथा बुद्धि को शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य तथा धर्म–अधर्म आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है फिर भी सभी परिस्थितियों में समत्वभाव से प्रसन्नतापूर्वक कर्म कर्तव्यबुद्धि से करते जाना तप है। इसमें देवता, ब्राह्मण, गुरुदेव तथा विद्वानों की सेवा तथा पूजा करना, शौच, सौम्यता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसादि नियमों का पालन शारीरिक तप है, अन्य जीवों को कष्ट न देने वाले वाक्य, सत्य तथा हितकारी भाषा का प्रयोग तथा स्वाध्याय वाणी का तप है। सदैव मन में प्रसन्नता बनाये रखना मौनव्रत का पालन, इन्द्रियों पर विषयों के प्रति रागद्वेष पर नियन्त्रण तथा चित्तशुद्धि के लिए प्रयासरत रहना मानसिक तप है। इन सभी तपों का एकमात्र लक्ष्य अन्त:करण की शुद्धि है, तभी यह कर्मयोग है। चित्त को सांसारिक इच्छाओं से मुक्त कर

आध्यात्मिक चिन्तन में एकाग्र करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय का परमात्मदर्शन में विशेष योगदान है, क्योंकि शास्त्र का कथन है–

स्वाध्यायात् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय का प्रमुख अंग मन्त्रजप है, क्योंकि जप करने से मन मंत्र में लय होता है, लयता से गुरुशक्ति तथा देवशक्ति चित्त का शुद्धिकरण करती है, शुद्धि से ध्यान–समाधि की योग्यता बढ़ती है और चित्त का योग में प्रवेश होता है। योग से स्वाध्याय पुष्ट होता है। इस प्रकार जब स्वाध्याय तथा योग के संयोग से अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है, माया का मलावरण क्षीण होता जाता है तब स्वतः ही रजोगुण तथा तमोगुण पर सतोगुण का आधिपत्य हो जाता है और सतोगुण के प्रकाश में परमात्मा का स्वरूप चित्त में प्रकाशित होने लगता है। क्रियायोग का तीसरा महत्वपूर्ण अंग है 'ईश्वरप्रणिधान' जिसका अर्थ है कि ईश्वर की शरण में आत्मसमर्पण करना। जब कोई अपराधी राजा की शरणागति पा जाता है तब राजा के सैनिक उसे बन्दीगृह में डालते हैं। ईश्वर राजा है तो माया उसकी सेना, अतः ईश्वर की शरणागति में आये साधक के मायिक बन्धन स्वतः टूट जाते हैं। वेदवाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि –

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टारं अनेकरूपम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता. उप. 5/13)

अर्थात् ईश्वर इस संसार का सृष्टा, भर्ता तथा नियन्ता है जोकि इस मायावी रचना के मध्य अनेक रूपों में अनन्त तथा अनादि है तथा विस्तार वाला होकर सर्वव्याप्त तथा सर्वाधार है। अतः उसकी ही कृपा से जो उसके इस दिव्य स्वरूप को जान लेता है वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर अमर हो जाता है। वह ईश्वर कहाँ मिलेगा और उसका ज्ञान कैसे होगा? इस पर वेदवाणी का कथन है –

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः यद्वाचो हि वाचं प्राणस्य प्राणः।
चक्षुसश्च चक्षु अतिमुच्य धीराः प्रेत्य अस्मात् लोकात् अमृताः भवन्ति।।

(केन उप. 1/2)

(क्रमशः)

●●●

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

विज्ञातारमरे केन विजानीयात - विज्ञाता को कैसे जानोगे ? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा - यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। ''हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो'' - यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है ? - जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें ?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, यह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है - और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम रूप हैं, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सत्य तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

- स्वामी विवेकानन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 MAY 2012

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रासलाल शर्मा